प्रकाशक—
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन-भवन, पटना–३

प्रथम संस्करण, वैशाख सं० २०१२ वि०, अप्रैल १९५५ ईसवी

मूल्य २) सजिल्द ३)

मुद्रक
श्रीकृष्णचन्द्र बेरी
विद्यामन्दिर प्रेस लिमिटेड,
मान-मन्दिर, बनारस

वक्तव्य

हिन्दी मे हिन्दू-धार्मिक कथाओ के रहस्योद्‌घाटन का प्रयत्न बहुत दिनो से होता आ रहा है। भारतीय धर्मशास्त्रियो और दार्शनिको ने इस विषय में जो तत्त्वान्वेषण किया है, वह युक्तियुक्त एवं हृदयग्राही भी है। पडित अम्बिकादत्त व्यास, पडित ज्वालाप्रसाद मिश्र, पडित रामस्वरूप शर्मा मुरादाबादी ('सनातनधर्मपताका'—सपादक), भारत-धर्म-महामडल (काशी), महामहोपाध्याय मधुसूदन झा, डॉ० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आदि ने इस दिशा में प्रशसनीय प्रयास किया है। किन्तु उनके मार्मिक विश्लेषण पर इस विज्ञान-युग में किसीका ध्यान नही जा पाता, क्योंकि उन लोगो ने भारतीय दृष्टिकोण से और शास्त्रीय पद्धति के अनुसार धार्मिक कथाओ के रूपकों तथा प्रतीको पर विचार किया है। यदि उनके विचारों के सकलन अथवा सग्रह प्रकाशित हो तो उनकी सूक्ष्मदर्शिता और गहरी पैठ का अनुमान किया जा सकता है। यो तो पुराणो में भी हिन्दू-देवताओ के वास्तविक स्वरूप का दार्शनिक विवेचन किया गया है। त्रिदेवो के प्रतीकात्मक स्वरूप-वर्णन के अतिरिक्त गाय, गगा, वटवृक्ष, पीपल, आमला, तुलसी आदि जडजीवो के स्वरूप-विश्लेषण में भी अध्याय-के-अध्याय लिखे गये हैं। निस्सन्देह हमारे प्राचीन आर्य-ग्रथो में धार्मिक कथाओ का काव्यात्मक रूप से रोचक वर्णन मिलता है। उसके भीतर जो तथ्य निहित है, वह अश्रद्धालु के शुष्क तर्क से ग्राह्य नही, प्रत्युत सहृदय-हृदय-सवेद्य है। हमारी धार्मिक कथाओ के आध्यात्मिक अर्थ तो हिन्दी के सत कवियो के काव्य में भी मिलते हैं। महात्मा गान्धी तो रामायण-महाभारत-गीता आदि की कथाओ का आध्यात्मिक अर्थ ही मानते थे। श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध में जो 'पुरञ्जनोपाख्यान' और 'कालकन्याचरित्र' है, उनसे धार्मिक कथाओ के रूपको के मनोवैज्ञानिक रहस्य का कुछ आभास मिल सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के मननशील लेखक ने अनुसधानात्मक स्वाध्याय के बल पर धार्मिक कथाओ के भौतिक तात्पर्य का स्पष्टीकरण बडे मनोयोग से किया है। उनकी गवेषणात्मक प्रणाली में नवीनता और सामयिकता है। आशा है कि इससे वर्तमान युग के अनुसधायको को प्रेरणा और सहायता मिलेगी।

'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के चौथे वर्ष की भाषणमाला का यह दूसरा भाषण है, जो सन् १९५४ ई० में १५–१६ मार्च को पटना-कालेज के बी० ए० लेक्चर-थिएटर में हुआ था और अब पुस्तकाकार में प्रकाशित होकर हिन्दी-पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इन्ही लेखक महोदय का ज्योतिर्विज्ञान-विषयक एक सचित्र

मौलिक ग्रन्थ (ग्रह-नक्षत्र) हम गत वर्ष प्रकाशित कर चुके है, जिसमें लेखक का सक्षिप्त परिचय भी सन्निविष्ट है। दोनो ही कृतियो से उनकी अध्ययनशीलता और मेधाशक्ति का परिचय मिलता है। सभवत वे ही बिहार के सर्वप्रथम आइ० सी० एस० है, जिन्होने साहित्य-सेवा की परम्परा प्रवर्तित करने का श्रेय प्राप्त किया है और इसकी आधारशिला होने से परिषद् को भी सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

खेद है कि आरम्भ के अध्यायो के शीर्षक मात्र असगत छप गये है। यह पुस्तक काशी में छपी है और इसका प्रूफ भी वही देखा गया। विज्ञ पाठको से निवेदन है कि असगति दूर करने के लिए आरम्भिक अध्यायो को सुधार लेने की कृपा करें। यथा—पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा।

वैशाखी पूर्णिमा (बुद्धजयन्ती)
सवत् २०१२ वि०

शिवपूजन सहाय
(परिषद्-मत्री)

भूमिका

धार्मिक कथाओ की उत्पत्ति तथा उनके वास्तविक अर्थ के विषय में कोई भी दो विद्वान्, कदाचित् ही कही, एक मत हुए हो। धार्मिक कथाओ में देवी-देवता अथवा अवतारी स्त्री-पुरुषो की उत्पत्ति एव उनके कार्यों का विवरण रहता है। अपने विकास की एक विशेष अवस्था में, मनुष्य जाति प्राकृतिक घटनाओं की पुष्टि तथा उन्हें समझने की चेष्टा, कथाओ द्वारा किया करती है। जैसा 'मालीनौस्की' ने अपनी पुस्तक 'मिथ-इन-प्रिमिटिव-साइकोलोजी' (Myth in Primitive Psychology) में लिखा है कि ये कथाएँ जान-बूझकर मन से गढी हुई कहानियाँ नहीं है। धार्मिक कथाओ से सम्बद्ध जातियो का इन कथाओ की सत्यता में अटूट विश्वास हो जाता है। ये कथाएँ उनकी मानसिक आवश्यकताओ को उतना ही सतोषपूर्वक पूर्ण करती है जितना भोजन उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को।

मानव-विज्ञानवेत्ताओं ने आदिम धर्म की उत्पत्ति के तीन स्रोत बताये है—आदिम मनुष्य ने निर्जीव पदार्थों और सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, अग्नि प्रभृति प्राकृतिक विभूतियो को अपने ही जैसा प्राणवान् समझा। फिर पेड-पौधे, नदी-पहाड अथवा पशु-पक्षी में पूर्वजो अथवा देवताओ की आत्मा का अनुमान करके उनकी ओर वह श्रद्धा से देखने लगा। एक देवता के अनेक गुणो से भिन्न-भिन्न देवताओ की उत्पत्ति हुई, पुन. किसी प्रतापी पुरुष ने अपने इष्टदेव को सबसे बडा देवता सिद्ध किया अथवा कही किसी दार्शनिक ने किन्ही एक देवाधिदेव को मानने का उपदेश दिया; परन्तु आगे चलकर उन देवाधिदेव के साथ और छोटे-मोटे देवता भी मिल गये।

धार्मिक कथाओ के, विशेष कर हिन्दू धार्मिक कथाओं के, अध्ययन करनेवालो में सबसे प्रसिद्ध नाम प्रोफेसर मैक्समुलर (Professor Max Muller) का है, जिन्हें भारतीय पण्डितो ने प्रेम तथा आदर से 'मोक्ष मुल्लर भट्ट' कहना आरम्भ कर दिया था। उन्होने आर्य जातियो की भाषा तथा उनकी धार्मिक कथाओ की एकता निश्चयात्मक रूपसे सिद्ध कर दी। मैक्समूलर के विषय मे उनके समालोचको ने ऐसा प्रचार करने की चेष्टा की कि वे धार्मिक कथाओ को भाषा से उत्पन्न एक रोग—'डिजीज आफ लैंग्वेज' (Disease of Language)—मानते थे। मैक्समूलर ने अपने 'कण्ट्रीब्यूशन्स टू द साइन्स ऑफ माइथोलोजी' (Contributions to the Science of Mythology) में उन मानव-विज्ञानवेत्ताओ की खिल्ली उडाई, जो अतिशय सभ्य आर्य जातियों की धार्मिक कथाओ का सबध ससार की वर्बर जातियो के रीति-रिवाजो मे जोडना चाहते थे। मैक्समूलर के अनुसार प्रारम्भिक आर्य प्रकृति के पूजक थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, उषा, रात्रि, वृष्टि, विद्युत आदि प्राकृतिक विभूतियो के जो नाम दिये, उन नामो के अपने-अपने लिंग अथवा वचन थे। इन

नामो का कोई-न-कोई अन्य अर्थ भी था, जिसके कारण उनके विषय में अनेक कथाओ का प्रादुर्भाव हुआ । मैक्समुलर का कथन भारतीय निरुक्तकारो के अनुसार था, जिन्होंने अपनी देव-विद्या में इसी मत की पुष्टि की।

मैक्समुलर के विरोधियों ने अनेक ऐसे दृष्टान्त दिये, जिसमें उत्तर ध्रुव-निवासी एस्कीमो अथवा दक्षिण अमेरिका, प्रशान्त सागर के द्वीप-पुञ्ज, न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया के निवासियों में भी वैसी ही कथाएँ मिलीं, जैसी आर्यजातियो की धार्मिक कथाएँ थीं। तब ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि इन कथाओं की उत्पत्ति भाषा के आधार पर हुई[1]। इसके पश्चात् टाइलर, स्मिथ, लैंग प्रभृति मानव-विज्ञान-वेत्ताओ ने धार्मिक कथाओं की आदिम उत्पत्ति के विषय में अपने-अपने सिद्धान्त प्रकाशित किये। इन मानवविज्ञान-वेत्ताओं मे सर जेम्स जौर्ज फ्रेजर का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'गोल्डेन बाऊ' (Golden Bough) में ससार की प्राय. सभी जातियो की धार्मिक कथाओ की उत्पत्ति को, वृक्षों अथवा पौधों के विकास तथा क्षय से सम्बद्ध माना है। डाक्टर जिवौंस ने अपने 'इण्ट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री ऑफ रीलिजन' (Introduction to the History of Religion) में धार्मिक रीति-रश्मो से ही अधिकाश धार्मिक कथाओं की उत्पत्ति अथवा उनका रूपान्तर सिद्ध करने की चेष्टा की है।

अपनी पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टु माइथोलोजी' (Introduction to Mythology)[2] में 'लेवि स्पेन्स' ने धार्मिक कथाओ को निम्नलिखित विभागो में बाँटा है—

(१) सृष्टि की कथाएँ, (२) मनुष्य की उत्पत्ति, (३) प्रलय, (४) स्वर्ग, (५) नरक, (६) सूर्य-विषयक कथाएँ, (७) चन्द्र-विषयक कथाएँ, (८) अवतारी पुरुषो की कथाएँ, (९) पशुओं की कथाएँ, (१०) किसी विशेष प्रथा अथवा धार्मिक प्रयोग का कारण, (११) पाताल-लोक अथवा यम-लोक से लौट आने की कथाएँ, (१२) देवताओं की उत्पत्ति, (१३) अग्नि-विषयक कथाएँ, (१४) तारा-विषयक कथाएँ, (१५) मृत्यु की कथाएँ, (१६) मृत आत्माओ का भोजन, (१७) कोई वस्तु अस्पृश्य क्यों हुई, (१८) किसी देवी-देवता के विभिन्न विभाग हो जाने की कथाएँ, (१९) देवासुर-सग्राम, (२०) खेती अथवा लकड़ी-लोहा इत्यादि का कार्य मनुष्य ने कैसे सीखा (२१) मनुष्य की आत्मा से सम्बद्ध कथाएँ।

प्रस्तुत पुस्तक का लेखक न तो भाषाशास्त्र का विशेषज्ञ है और न मानव-विज्ञान का। साधारण शासन कार्य में सलग्न सरकारी कर्मचारी होने के नाते उसे सभी-कुछ में, किसी-न-किसी रूप में, हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता रहा है

---

१ देखिए—इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—माइथोलोजी (Encyclopedia Brittanica —Mytholgy.

२ प्रकाशक—George Harrap, London.

ग्रौर कदाचित् ग्रागे भी मिलता रहे। परन्तु यह पुस्तक इस विचार से प्रस्तुत नही की गई है ।

जैसा 'करेन्यी'[१] ने युग के साथ मिलकर लिखी हुई पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टु ए साइन्स ग्रॉफ माइथोलोजी' (Introduction to a Science of Mythology) में लिखा है—'ग्राधुनिक वैज्ञानिक यग में जो वस्तु समझ में न ग्राये, उसका प्राय ग्रस्तित्व ही नहीं है।' हमारी धार्मिक कथाग्रो का हमारे जीवन में ग्रतिशय महत्त्व है, ग्रौर यदि हम समझ-बूझकर उनका ग्रध्ययन करें, तो प्राचीन धारणाग्रो से ग्राधुनिक युग के जीवन में हमारा परिवर्त्तन ग्रधिक सुगम होगा। लेखक ने इसी विचार से हिन्दू धार्मिक कथाग्रो को पढने ग्रौर समझने की चेष्टा की। लेखक का ग्रपना यह मत है कि मैक्समुलर, लेइग फ्रेजर, जिवोन्स ग्रादि सभीके सिद्धान्तो में सत्य का ग्रश है तथा किसी विशेष धार्मिक कथा की उत्पत्ति उक्त सभी कारणो से ग्रथवा किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन से हो सकती है। जबतक किसी धार्मिक कथा का ऐतिहासिक होना, प्रमाणो से सिद्ध न हो जाय, तबतक कदाचित् प्राकृतिक विभूतियो ग्रथवा धार्मिक कार्य में व्यवहृत भौतिक पदार्थो (यज्ञ, वेदी, हवन, पात्र ग्रादि) से ही उनका सम्बन्ध समझना ग्रधिक युक्तिसगत होगा ।

यह पुस्तक विशेषज्ञो के लिए नहीं लिखी गई है। यह तो लेखक-जैसे ही साधारण मनुष्यो में धार्मिक कथाग्रो को समझबूझकर ग्रध्ययन करने की ग्रभिरुचि उत्पन्न करने के लिए लिखी गई है। इस पुस्तक के निमित्त प्रेरणा देने के लिए लेखक 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' का कृतज्ञ है। लेखक का विश्वास है कि इस विषय के बहुत से विशेषज्ञ इस पुस्तक में लिखी हुई बातो से सहमत न होंगे; पर यदि एक-दो विशेषज्ञ भी इससे सहमत हुए, तो वह ग्रपना महोभाग्य समझेगा ।

स्ट्रैण्ड रोड, पटना
रामनवमी, स० २०१२ वि०

त्रिवेणीप्रसाद सिंह

---

१ Jung and Kerenyi, प्रकाशक—Routledge and Kegan Paul, London

विषय-सूची

हिन्दू-धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ

प्रथम अध्याय

देवासुर

ऋग्वेद का सबसे प्राचीन उपलब्ध भाष्य श्री यास्कमुनि का 'निरुक्त' है। इसमें 'देव' शब्द की परिभाषा है—

> देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो
> भवतीति वा। यो देवः सा देवता।[1]

अर्थात्—जो मनुष्यों को धनधान्य दे, या जो दीप्तिमान् हो या द्युतिमान् हो या जिसका स्थान द्यु अर्थात् आकाश है, वही देव है। देव ही देवता है।

निरुक्तकार ने देवताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—पृथ्वी के देवता, अन्तरिक्ष के देवता तथा आकाश के देवता। अग्नि देवता का स्थान पृथ्वी है। वायु अथवा इन्द्र का स्थान अन्तरिक्ष है। सूर्य का स्थान द्यु आकाश है। इन ऐश्वर्यशाली देवताओं के बहुतेरे नाम हैं। इन नामों से प्रत्येक देवता के विभिन्न कर्मों का बोध होता है।[2]

द्यौस् अथवा देव शब्द जिअस, थिओस, तिवर इत्यादि रूपों से आर्य टोलियों की सभी शाखाओं में महान् प्राकृतिक शक्तियों का द्योतक बना। निरुक्तकार के अनुसार देवताओं के नाम उनके विभिन्न कर्म के द्योतक हैं। वैदिक मन्त्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवताओं का स्वयं भौतिक अस्तित्व नहीं, वरन् वे भौतिक घटनाओं के सूक्ष्म कारण हैं। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में जाज्वल्यमान आदित्य के पीछे छिपे हुए पुरुष, अर्थात् अदृश्य पुरुष को आदित्य का प्रेरक कहा गया है।

---

(१) निरुक्त ७।४।१५ (२) निरुक्त ७।२।५

देवो का प्राचीनतम विशेषण था असुर । निरुक्तकार ने असुर का अर्थ बताया है, महान् 'असु' अथवा 'प्राण' वाला अर्थात् अमरणशील । ऋग्वेद में लगभग सभी महान् देवताओ को असुर कहा गया है ।

गभीरवेया असुर, सुनीथ, (सविता[1]) हिरण्य हस्तो असुर, सुनीथ, (सविता[2]) बृहच्छ्रवा असुरा बर्हणा कृत (इन्द्र[3]) द्यौरसुरो (द्योस्[4]) त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिव (अग्नि[5]) पिता यज्ञानामसुरो विपश्चिताम् (अग्नि[6]) घृतप्रसत्तो असुर सुशेवो (अग्नि[7]) गावा चेतिष्ठो असुरो मघोन (अग्नि[8]) अतूर्तपन्था असुरो मयोभु (रुद्र[9]) पूषा असुरो दधातु न (पूषन्[10]) असुर पिता न (पर्जन्य[11]) असुरो न होता (इन्द्र[12]) जानाना यो असुरो विधर्ता (मरुद्गण[13]) असुरो विश्ववेदा (वरुण[14]) त्रीन्त्समूर्ध्नो असुरश्चक्र आरमे (पवमान सोम[15]) सोमो असुरो वेद भूमन (पवमान सोम[16]) असुरो वेपते मती (अग्नि[17]) इव एषामसुरो नक्षत (अग्नि[18]) ।

असुर प्रचेता (वरुण[19]) नून् पाह्यसुर त्वमस्मान् (इन्द्र[20]) . वरुण असुर (वरुण[21]) इकावा एषो असुर प्रजावान् (अग्नि[22]) त्वा नूनमसुर (इन्द्र[23]) प्रपस्त्यमसुर हर्यत (इन्द्र[24]) महो असुर (इन्द्र[25]) ।

ऋग्वेदोक्त निम्नलिखित उद्धरणो में असुर शब्द किसी देवता विशेष की उपाधि न होकर अपने व्यापक देवत्व के अर्थ में व्यवहृत हुआ है—**असावन्यो असुर सूयतद्यो ।**[26] **अग्निर्भरत उच्चावच । असुर इव निर्णिजम् ।**[27] **महद् देवानामसुरत्वमेकम् ।**[28]

ऋग्वेद में ही अन्य स्थानो पर असुर के भक्षण[29] असुर के वीर[30] असुर के गो,[31] असुर के जठर,[32] असुर के नाम (वन्दना[33]), असुर का प्रयाण,[34] असुर की माया,[35] असुर का साम्राज्य,[36] असुर की योनि,[37] ऐसे वर्णन व्यवहार में आये है । इन सभी में असुर शब्द वरुण, अग्नि, द्यौस् इत्यादि देवो के ही अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। ऋग्वेदसहिता ७।६५।२ तथा ८।२५।४ में एक ही स्थान पर मित्र तथा वरुण को देव तथा असुर इन दोनो विशेपणो से सम्बोधित किया गया है। 'ऋग्वेदसहिता' १।६४।२ मे मरुतो को 'रुद्र के असुर' कहकर सम्बोधित किया गया है ।

---

(१) १।३५।७, (२) १।३५।१०, (३) १।५४।३, (४) १।१३१।१, (५) २।१।६, (६) ३।३।४ (७) ५।१५।१, (८) ५।२७।१, (९) ५।४२।१, (१०) ५।५१।११, (११) ५।८३।६ (१२) ७।३०।३ (१३) १।५६।२४, (१४) ८।४२।१, (१५) ९।७३।१, (१६) ९।७४।७, (१७) १०।११।६, (१८) १०।७४।२, (१९) १।२४।१४, (२०) १।१७४।१, (२१) २।२७।१०, २।२८।७, (२२) ४।२।५, (२३) ८।९०।६ (२४) १०।९६।११, (२५) १०।९९।१२, (२६) १०।१३२।४, (२७) ८।१९।२३, (२८) ३।५५।१, ३।५५।२२, (२९) १।११०।३, (३०) १।१२२।१, ३।५३।७, ३।५६।८, १०।१०।२, १०।६७।२, (३१) १।१२६।२ (३२) ३।२९।१४ (३३) ३।३८।४, (३४) ५।४९।२, (३५) ५।६३।३, ७ (३६) ७।६।१ (३७) १०।२१।६।

परन्तु 'ऋग्वेद' मे असुर शब्द के बुरे अर्थ के भी उदाहरण मिलते हैं। 'ऋग्वेदसहिता' २।३०।४ में देवराज इन्द्र 'असुर के वीरों' के मारनेवाले कहे गये है। 'ऋग्वेदसहिता' ६।२२।४ के इन्द्र 'असुरघ्न' अर्थात् 'असुर को मारनेवाले' है। 'ऋग्वेदसहिता' ७।१३।१ में अग्नि को 'असुरघ्न' कहा गया है। 'ऋग्वेदसहिता' ७।९९।५ में 'उरुक्रम' विष्णु को वर्चिन् नामक असुर के वीरो को मारनेवाला कहा गया है। 'ऋग्वेदसहिता' १०।१३८।३ के इन्द्र ने 'पिप्रु' नामक 'मायावी असुर' के अजेय दुर्गों पर ऋजिश्व नामक आर्य राजा के हेतु विजय पाई थी। 'ऋग्वेदसहिता' १०।१७०।२ के सूर्य्य 'दिव अभित्रहा वृत्रहा दस्युहतम असुरहा' हैं। 'ऋग्वेदसहिता' ८।९६।९ मे इन्द्र को 'अदेव असुरों' अर्थात् 'देव विरोधी' असुरो का मारनेवाला कहा गया है। 'ऋग्वेदसहिता' १०।१२४।५ में अग्नि को 'असुरो की माया' नष्ट कर देनेवाला कहा गया है। 'ऋग्वेदसहिता' १०।१५७।४ के देव 'असुरो' का हनन कर के देवत्व की रक्षा करते हैं। 'ऋग्वेदसहिता' १०।१५१।३ में देवो ने 'श्रद्धा' को 'असुरो' के सामने कर के उन पर विजय पाई।

ब्राह्मणो मे एक प्रजापति के दो प्रकार की सन्तान 'देव' तथा 'असुर' के वर्णन हैं। इनमें देवता कम अथवा छोटे थे तया असुर अधिक बड़े। इन लोको मे वे परस्पर स्पर्धा करने लगे। देवताओं ने यज्ञ मे 'उद्गीथ' के द्वारा असुरों का अतिक्रमण करने का विचार किया।[1] भाष्यकार शंकर के अनुसार शास्त्रोक्त कर्म तथा ज्ञान से प्रभावित प्राण, अथवा शक्तियां देव है, क्योंकि यह 'द्योतनशील' है तथा स्वभाव अथवा अनुमान जनित प्राण अथवा प्रेरण 'असुर' है क्योंकि यह अपने ही असु अर्थात् प्राण में रमते हैं।

यह प्रसिद्ध है कि संस्कृत का 'स' ईरानी भाषा में 'ह' का रूप ले लेता है। आर्यों की जो टोली ईरान को गई, वह 'अहुर' अर्थात् 'असुर' की ही पूजा करती रही। आरम्भ में निश्चय अन्य आर्य टोलियों की भांति ईरानी आर्य 'देव' अथवा 'दिव' भी उन्हीं महान् शक्तियों को कहते थे, जिनको वह 'अहुर' नाम से पूजते रहे। जैसे भारत मे असुर शब्द पीछे चलकर बुरे अर्थ में ही व्यवहृत होने लगा, वैसे ईरान में 'देव' अथवा 'दिव' शब्द 'चमकीले राक्षस' के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। ईरान में 'देव' शब्द के अर्थ के इस रूपान्तर का आर्यों की भिन्न-भिन्न टोलियों के आपसी झगड़ों से सम्बन्ध जान

(१) [illegible]

पड़ता है। 'अवेस्ता' के यस्ना ३२।३ मे 'ज़ाराथुष्ट्र' कहते हैं,— **अत् युस् देवा विश्येन्हो अकात् मनहो स्ता चित्रम् । यश्चा वै मस् यज़इते द्रुजश्चा पैरिमतो-इश्चा ।'** "परन्तु हे देवो, तुम सभी अपवित्र मन से उत्पन्न हुए हो। जो मरणशील मनुष्य तुम्हें पूजेगा, उस घमडी को द्रोही 'द्रुज' माना जायगा ।" वैदिक देवो के प्रधान इन्द्र अवेस्ता में 'अन्द्र' नामक द्रोही शक्ति बन बैठे है । 'वोगाज़ कुई' की खुदाइयो में एक मित्तानी शिला-लेख प्राप्त हुआ है, जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र तथा नासत्य (अश्विनीकुमार) की वन्दना है । अवेस्ता में भी इन्द्र घृणा के पात्र हैं, परन्तु विरित्रघ्न, बहराम अथवा 'राम' के नाम से विघ्नकारी अथवा आच्छादक अधकार रूपी वृत्र के मारनेवाले (इन्द्र) की पूजा वास्तव में होती ही रही । जैसे ऋग्वेद में 'असुर' देवो का प्राचीन नाम है वैसे ही अवेस्ता में भी 'देव' पूजनीय अहुरो का प्राचीन नाम पड़ता है । यस्ना २९।४ में *'मजदा' को 'पूर्वकाल में देवो तथा मनुष्यो द्वारा किये गये कर्मों' का जाननेवाला बताया गया है ।*

ईरान में तथा भारत मे किस प्रकार 'असुर' 'अहुर' तथा 'देव' का भेद प्रारम्भ हुआ है, यह ठीक-ठीक कहना अत्यन्त ही कठिन है । 'हौग' के अनुसार यह भेद ईरानी तथा भारतीय आर्य टोलियो के आपसी झगडो का फल था ।[1] परन्तु 'डार्मेस्टेटर' प्रभृति विद्वान् इसका दूसरा ही कारण बताते है । इनके अनुसार प्राचीन 'असुरो' की 'माया' तथा 'असुर' शब्द में शुभ वस्तुओ के द्योतक 'सु' अक्षर के पहले नकारात्मक 'अ' का होना, ये ही दोनो भारत में इस शब्द के बुरे अर्थ में प्रयोग होने के प्रधान कारण हुए ।[2] ऋग्वेद मे दैवी मरुद्गण 'असुर के वीर' कहे गये है, पर साथ ही इन्द्र प्रभृति देवताओ ने *'असुर के वीरो' के साथ युद्ध भी किया तथा उनपर विजय भी पाई ।*

एक असुर शब्द का ही ऐसा हाल हुआ, यह बात नही है। ऋग्वेद में जहाँ (वरुण आदि) असुरो की माया का श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है, वहाँ इन्द्र 'मायी (मायावी) दानव (जलनिरोधक वृत्र) की माया' को अपने वज्र से छिन्न करते हैं।[3] इन्द्र ने दानव (जल-राशि 'दानु' के पुत्र जलनिरोधक वृत्र) को मारा।[4] परन्तु ऋग्वेद मे ही देव-मरुतो को 'सुदानव' अर्थात् सुन्दर दानव कहकर बारबार सम्बोधित किया गया है ।[5] अग्नि[6], वरुण, मित्र,

---

1 Essays on the Religion of the Parsis– p 272
2 Religion and Philosophy of the Veda (Keith) Chapter 15
(३) २।११।१० (४) ५।२६।४, ५।३२।१, (५) १।१५।२, १।२३।६, १।३६।१०, १।४०।६, १।४४ १४, १।६४।६, १।८५।१०, १।१७२।१–३, २।३४।८, इत्यादि, (६) १।४५।१०।

अर्यमा[१] ये सभी देवता सुदानव कहे गये हैं। निरुक्तकार ने दानव का अर्थ (जल का) दान देनेवाला बताया है।[२] यहाँ मार्के की बात यह है कि 'दानवों' के 'राजा' बलि पुराणों में अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं। 'मोक्षमुल्लर' के अनुसार 'जिग्रस' की स्त्री तथा 'परमिग्रस' की माता 'दानाई' भारतीय दानु अर्थात् वृत्र की माता थी, जिसका भौतिक रूप अंधकार है। अंधकार से ही द्युतिमान् देवों की उत्पत्ति होती है, अतः अंधकार रूपिणी 'दानु' का द्युतिमान् अथवा दानवान् देवों की माता होना, किसी प्रकार असंगत नहीं है।[३] पुनः द्योतनशील देवों की विरोधी शक्तियाँ भी इसी अन्धकारमय 'दानु' से उत्पन्न हुई होंगी। अतिप्राचीन काल में देव, असुर तथा दानव प्रकृति की महान् शक्तियों के प्रेरक होने के कारण परस्पर सम्बद्ध थे, यहाँ तक कि एक ही देव-विशेष को असुर तथा दानव भी कहा जाता था। ऋग्वेद में हिरण्याक्ष नाम से सूर्य की प्रार्थना है "हे सविता (सूर्य) देवता! जिनसे आठ दिशाएँ, तीन लोक तथा सात नदियाँ प्रकाशित हैं, जो 'हिरण्याक्ष' अर्थात् सोने के रंग की आँखवाले हैं, या चमकीली आँखवाले हैं, यहाँ आइए तथा दानशील यजमान को मनोवाञ्छित रत्न दीजिए।"[४]

ऋग्वेद में हिरण्य (सुवर्ण) का देवताओं से विशेष सम्बन्ध है। सविता देव हिरण्याक्ष हैं तथा हिरण्यहस्त (सोने के हाथवाले) भी हैं।[५] अग्निदेव हिरण्यकेश (सोने जैसे केशवाले) हैं।[६] विश्वेदेव हिरण्यकर्ण तथा मणिग्रीव (अर्थात् कान में सोने का कुण्डल तथा गले में मणि पहननेवाले) हैं।[७] अग्नि देव की जिह्वा भी 'हिरण्य' की ही है[८] तथा दाँत भी[९]। अश्विनीकुमार हिरण्यत्वक् हैं।[१०] मेघस्थित् वन रूपी 'भुरण्यु' अग्नि हिरण्यपक्ष हैं।[११] अश्विनीकुमार स्वयं सोने के पंखवाले हिरण्यपर्ण हैं।[१२] वज्री इन्द्र भी हिरण्यबाहु हैं।[१३] अश्विनीकुमारों के रथ का 'अक्ष' 'हिरण्य' है।[१४]

परन्तु जहाँ सभी महान् वैदिक देवताओं का हिरण्य से इतना घना सम्बन्ध है, वहाँ देवशत्रु (आच्छादक) वृत्र के अनुचर भी "हिरण्येन मणिना शुम्भमाना" हैं।[१५] पुराणों में वैदिक सूर्य का 'हिरण्याक्ष' रूप दैत्य अथवा असुर हिरण्याक्ष बन बैठा। फिर भी सूर्य देवता पूजा के पात्र रहे। इसमें कोई विशेष आश्चर्य नहीं है, क्योंकि निकटवर्ती आर्य देश ईरान में इन्द्र (अथवा अन्द्र या इन्दर) तो

(१) १।१५।६ (२) निरुक्त १०।१।६, (३) Contributions to the Science of Mythology, Vol II. P 525 (४) अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्। हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ऋ० मं० १।३५।८। (५) १।३५।१०, (६) १।७९।१, (७) १।१२२।१४, (८) ३।७१।३, (९) ५।२।३, (१०) ५।७५।४ (११) १०।१२३।६ (१२) ५।७८।४ (१३) ७।३४।४, (१४) ८।५।२६ (१५) १।३३।८ ।

'अहुर' तथा मानवो के शत्रु बन गये, पर 'विरीत्रघ्न' के रूप में विघ्न अथवा आच्छादन पर विजय पानेवाले 'अहुर' की पूजा होती रही।[1]

ऋग्वेद में देवराज इन्द्र का प्रधान शत्रु 'वृत्र' है। वृत्र शब्द का अर्थ है--'घेर कर रखनेवाला'। वृत्र जल को घेर कर रखता है। इन्द्र उसका वध करके उस जल को पृथ्वी पर लाते हैं। ऋग्वेद मे वल, अर्बुद तथा पणि--ये भी वृत्र के समान गो (जल, प्रकाश, पृथ्वी अथवा कृषि) को रोक कर अथवा घेर कर रखनेवाले शत्रु हैं। जिनसे इन्द्र तथा अन्य देवता (जो असुर भी हैं) युद्ध करते है। वृत्र 'दानु' का पुत्र दानव है, पर स्वय वृत्र का भी नाम दानु है। वृत्र के मारनेवाले इन्द्र तथा विष्णु के सहायक मरुद्गण भी दानव है अर्थात् 'दानु' रूपी अन्धकार के पुत्र है। इन्द्र तथा वृत्र के आकाशिक उद्भव के इतने लक्षणो के होने पर भी अगरेजी पुस्तक 'प्रिहिस्टारिक इण्डिया' के लेखक स्टुअर्ट पिगट ने वृत्र अथवा वल के वध तथा जल की धारा बहाने का अर्थ आर्य सेनाओ द्वारा सभ्य अनार्यों के बाँधो को तोड कर जल द्वारा उनकी बस्तियो को तहस-नहस करना समझा है। परन्तु, मित्तानी राजाओ द्वारा इन्द्र की पूजा तथा विरीत्रघ्न, वाहागन, बहराम अथवा राम के रूप मे ईरान एव आरमीनिया में इन्द्र की पूजा, इस सिद्धान्त की पुष्टि नही करते।[2]

ऋग्वेद मे देवताओ तथा दास अथवा दस्युओ के युद्धो का वर्णन अवश्य है, जिनके पुरो को देवताओ ने जीत लिया। सम्भवत यह दस्यु उस काल के अनार्य नेता थे। पर इनके साथ ही 'रक्ष, यातु तथा यातुधान' नाम के शत्रुओ का भी वर्णन है। इन्हें मनुष्यो का शत्रु कहा गया है तथा इनसे रक्षा के लिए देवताओ की प्रार्थना की गई है। इनके वर्णन हिसक पशु, लुटेरे, व्यभिचारी, स्त्री-पुरुष, रोग, प्रभृति जैसे है तथा लगभग सभी (असुर) देवो से इन आपदाओ के निराकरण के लिए प्रार्थना की गई है। सूत्रो में भी राक्षस देवो से ही नही, असुरो से भी अलग माने गये हैं। यथा--'याभिर्देवा असुरानकल्पयन् यातून्मनून् गन्धर्वान् राक्षसश्च।'[3]

देव तथा असुर स्पष्ट ही महान् प्राकृतिक शक्तियो के नाम थे। भारत में देव दिव्य तथा हितकारी शक्तियो का नाम रहा एव 'असुर' नाम अधकार, आच्छादन अथवा अहित करनेवाली शक्तियो के लिए व्यवहार में आने लगा। ये शक्तियाँ सजीव एव ऐश्वर्यशालिनी थी। अत इनके लिए 'असुर' नाम का प्रयोग

---

(1) Essys on the Religion of the Parsis Haug p 268
(2) Mythology of all Races–Iranian–Cornoy–p 271

ठीक ही अर्थ में हुआ । परतु 'दैवी' शक्तियो के 'दिव्य' गुणो पर अधिक ध्यान देने के कारण क्रमश लोग इस बात को भूल गये कि जो देवता हैं, वेही सजीव 'असुर' भी हैं।

पराक्रमी एव तेजस्वी 'देव' तथा महावलशाली 'असुर' इस प्रकार क्रमश एक दूसरे से पृथक् हो गये। उपनिषदो की सूक्ष्म विचारधारा ने उन्हें मनुष्य की ही सुप्रवृत्तियो तथा कुप्रवृत्तियो का रूप दिया तथा पुराणो में वे मनुष्य की भांति हाथ-पांव-मुहँवाले देवासुरो के रूप में आये। फिर 'असुर' के 'अ' को नकारार्थक मानकर देवो को 'सुर' कहा जाने लगा।

उपनिषद्कार ने देवासुर-सग्राम का अत्यन्त ही सरल वर्णन किया है। देवताओ ने असुरो पर विजय प्राप्त करने के हेतु वाक् से उद्गान करने के लिए कहा। उसने जो अपने मे भोग था, उसे देवताओ के लिए गान किया तथा 'कल्याण' को अपने लिए गाया। असुरो ने यह जान कर 'वाक्' को पाप से विद्ध कर दिया। तव से ही निषिद्ध भाषण पाप है। देवताओ ने इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय, चक्षु, श्रोत्र (कान) तथा मन से उद्गान करने के लिए कहा एव सभी स्वार्थ के कारण असुरो द्वारा पाप से विद्ध हो गये। यह देख कर देवताओं ने मुख्य प्राण से उद्गान करने को कहा। असुरो ने उसे भी पाप से विद्ध करना चाहा, पर 'जिस प्रकार पत्थर से टकराकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है', उस प्रकार ही वे सब असुर विध्वस्त हो गये। देवताओ की विजय हुई।

ब्राह्मणकाल में जब देव तथा असुर ये दोनो अलग हो गये तब भी उनके गुणो का पूरा बँटवारा न हो सका। महाकाव्य तथा पुराणो के इन्द्र और वरुण में 'आसुरी माया' थी तथा बलि, प्रह्लाद इत्यादि 'असुर' राजाओं में अनेक दैवी गुण वर्तमान थे।

श्रीमद्वाल्मीकि की रामायण मे 'सुर' तथा 'असुरो' का एक और भेद दिया है। समुद्रमन्थन में जब वरुण की कन्या 'सुरा' निकली तब उसे अदिति के पुत्रो ने ग्रहण कर लिया, पर दिति के पुत्रो ने उसे ग्रहण नही किया। इसीलिए वे क्रमश. 'सुर' तथा 'असुर' कहलाये। ऋग्वेद में सुरा का वर्णन है, परन्तु सुर शब्द का कही भी प्रयोग नही है।

द्वितीय अध्याय

समुद्र-मंथन

देवताओ तथा असुरो ने मिल कर समुद्र का मथन किया था। इसका प्राचीनतम वर्णन श्रीमद्वाल्मीकि रचित रामायण के बालकाण्ड के ४५वें सर्ग में है। रामलक्ष्मण जब मिथिला को जाते हुए गगा के उत्तरी तट से कुछ दूर 'विशालपुरी' अर्थात् अर्वाचीन 'वैशाली' के समीप पहुँचे, तब उन्होने विश्वामित्र से उस नगरी का इतिहास पूछा। विश्वामित्र ने अति प्राचीन 'विशाला' नगरी की कथा कहते समय प्रसगवश 'दिति' तथा 'अदिति' के पुत्रो द्वारा समुद्रमथन तथा उससे हलाहल विष, धन्वन्तरि, अप्सराएँ, वारुणी सुरा, अश्वश्रेष्ठ उच्चै श्रवा, कौस्तुभ मणि तथा अमृत की उत्पत्ति का विवरण बताया। अमृत के लिए 'दिति' तथा 'अदिति' के पुत्रो में युद्ध हुआ, जिसमें दिति के पुत्र मारे गये और 'पुरन्दर' (पुरो को गिरानेवाले) इन्द्र को सभी लोको का राज्य मिला।[1] आंशिक रूप मे यही वर्णन महाभारत में है तथा कुछ रूपान्तर सहित अधिकाश पुराणो में भी।

'समुद्र' शब्द का अर्थ ऋग्वेद काल में इसके आधुनिक अर्थ से बहुत-कुछ भिन्न था। निरुक्तकार ने 'समुद्र' की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। **'समुद्रवन्त्यस्मादाप'**—जिससे आप—जल, तरग, फेन अथवा वाष्प के रूप में ऊपर की ओर उठे वह समुद्र है। **"समोवन्तेऽस्मिन्भूतानि"**—जिसमें सभी जीव प्रसन्न होकर रहें, वह समुद्र है। **"समुदको भवति"**—'उद्र' अर्थात् 'उदक्' का समूह समुद्र है। **"समुनत्ति इति वा"**—वर्षा से पृथ्वी को जो भिगोए वह समुद्र है।

ऋग्वेद का समुद्र एक 'ऊपर' था और एक 'नीचे'। **'आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिदेव सुमतिं चिकित्वान्। स उत्तरस्मादधर समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि।'** (ऋ० स० १०।९८।५)। आर्ष्टिषेण देवो की सुमति जान

---

(१) रामायण १।४५।१६–४५

कर होत्र कर्म करने बैठा तथा उसने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र तक जग की सृष्टि की। "तस्या समुद्रा अधि विक्षरन्ति" (ऋ० म० १।१६४।४२)—उस (अग्निहोत्रादि कर्म) से ही 'समुद्र' से जल गिरता है।

यह ऊपर तथा नीचे के समुद्र प्राचीन जातियो की भुवन संस्था के आवश्यक अंग है। विशेषज्ञो के विचार में इस जलमयी भुवनसंस्था (Water Cosmogony) की उत्पत्ति प्राचीन बैबीलोन के समुद्रतटवर्ती नगर 'एरिदू' में हुई। बैबीलोन के लोग सारे पदार्थों को समुद्र के जल से ही उत्पन्न हुआ मानते थे। उनके विचार में पृथ्वी चारो ओर जल 'अप्सु' से घिरी थी। इनके विपरीत बैबीलोन के ही 'निपुर' नगर में, जो समुद्र से दूर था, एक दूसरे प्रकार की भुवनसंस्था निकली। इस भुवनसंस्था में पृथ्वी एक पर्वत के समान थी, जिसके शिखर पर देवता निवास करते थे। इन दोनो भुवनसंस्थाओ के सम्मिश्रण से बैबीलोन की मिश्रित भुवनसंस्था निकली, जिसके अनुसार पृथ्वी तथा इसके ऊपर का आकाश रूपी ठोस चदोवा नीचे, ऊपर तथा चारो ओर जल से घिरा था। सूर्य चन्द्रमा तथा तारागण 'ऊपर के समुद्र' से निकल कर आकाश पर अपने-अपने लिए बनाये हुए रास्ते पर चल कर फिर उसी समुद्र मे प्रवेश कर जाते थे।[1]

भुवनसंस्था मे भेद होने पर भी अधिकांश प्राचीन देशों मे जल (आपस्, आप, अप्सु) से ही विश्व की उत्पत्ति मानी गई है। जल को ही विश्व का मातृत्व प्राप्त था। 'ऋग्वेद संहिता' के निम्नोक्त मन्त्र इस प्रसंग में विशेष महत्व रखते हैं—

"अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पय ॥ अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ अपो देवीरुप ह्वये यत्र गाव: पिबन्ति न:। सिन्धुभ्य कर्त्वं हवि: ॥ अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिन ॥ अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजी ॥ आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥" १।२३।१६–२१

"जल से हमारी उत्पत्ति है, अत जलराशि हमारी कल्याणकारिणी मां है। जल मे ही दुग्धादि मधुर पदार्थ होते हैं। जो जल सूर्य में है अथवा जिस जल में सूर्य है, वह हमें यज्ञ (कर्म) की ओर प्रेरित करे। जिन जलाशयों में हमारी

(1) Early Astronomy and Cosmology–C. P. S. Menon–George [illegible]

गौएँ जल पीती हैं, वह हमारे लिए देवी तुल्य हैं। हम उनकी आराधना करते हैं। हमें नदियो को हविप्रदान करना चाहिए। जल में अमृत है। जल में ओषधियाँ हैं। जल की प्रशसा के लिए देवता शीघ्रगामी (वाजिन्=शीघ्रगामिन् =युद्धशील) होते हैं। सोम देवता ने मुझ से कहा है कि जल (अप्सु) में विश्व की सभी ओषधियाँ हैं। जल में ही 'विश्वशभु' अग्नि भी है। जल ही विश्व के चिकित्सक हैं। जल से ही वह रोग निवारक ओषधियाँ निकली है, जिनके व्यवहार से (दीर्घायु होकर) हम चिर काल तक सूर्य को देख सकेंगे।"

इन मन्त्रो में जलराशि से अमृत की उत्पत्ति, इस 'अमृत' के लिए देवताओ का शीघ्रगामी (अथवा युद्धशील) होना, जल के साथ विश्वचिकित्सक 'धन्वतरि' का सम्बन्ध, इन सभी वृत्तान्तो के बीज हैं। जल से अग्नि का उत्पन्न होना यों तो असगत मालूम होता है, पर वास्तव में ऐसी बात नही है। ऋग्वेद में तो अग्नि का एक नाम ही 'अपान्नपात्' जल की सन्तान, है। मेघो में जलराशि के बीच विद्युत्स्वरूप अग्नि वर्तमान है तथा काष्ठ की उत्पत्ति जल से होने के कारण काष्ठ के अन्तर्गत अग्नि भी जल की ही सन्तान हुई। रामायण में समुद्र-मथन के वर्णन में 'हालाहल विष' को अग्नि के समान बताया गया है, जिसे धारण करने से 'शभु' का कठ मेघ के समान नीला पड गया। ऋग्वेद में स्वय अग्नि अपने कल्याणकारी गुणो के कारण विश्वशभु है।

जल से निखिल विश्व की उत्पत्ति हुई, ऐसा भारत ही नही, लगभग सभी प्राचीन देशो में माना जाता था। ईरान के प्रधान देवता 'अहुर माजदा' ने जल से विश्व की सृष्टि की। बैबीलोन में 'या' देवता ने 'अप्सु' से ही विश्व की सृष्टि की। मिस्र के 'ओसाइरिस' तथा 'आइसिस' दोनो ही देवताओ के अश्रुविंदु से उभिद् तथा जगम जीवो की उत्पत्ति मानी जाती थी[१]। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में सृष्टि का क्रम इस प्रकार बताया गया है—"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सभूत। आकाशाद्वायु। वायोरग्नि। अग्नेराप। अद्भ्य पथिवी। पृथिव्या ओषधय। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुष।"[२] उस आत्मा से ही आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओपधियाँ, ओपधियो (वनस्पति) से अन्न, अन्न से पुरुप। यहाँ जल से अग्नि का होना न मानकर अग्नि से ही जल का होना समझा गया है। यह भौतिक पदार्थों का अवलोकन किये विना ही

१ Myths of Babylon and Assyria D A Mackenzie p 44

आत्मा से आरंभ कर के क्रमशः स्थूलतर पदार्थों की शृंखला बनाने का फल है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में सबसे पहले जल की ही उत्पत्ति बताई गई है। यह निम्नोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जायगा—"पहले यहाँ कुछ भी नहीं था। यह सब मृत्यु से ही आवृत था। यह अशनाया (क्षुधा) से आवृत था। अशनाया ही मृत्यु है। उसने आत्मा से युक्त होना चाहा। उसने अर्चन करते हुए आचरण किया। उसके अर्चन करने से आप हुआ। अर्चन करते हुए मेरे लिए 'क' (जल—सुख) प्राप्त हुआ, यही अर्क का अर्कत्व[1] है। 'आप' ही अर्क है। उन आपो का जो शर (स्थूल भाग) था, वह एकत्र हो गया। यह पृथिवी हो गई। उसके उत्पन्न होने पर वह (मृत्यु) थक गया। उस थके और तपे हुए मृत्यु रूप प्रजापति की देह से उसका सारभूत तेज (अग्नि) प्रकट हुआ[2]।" बृहदारण्यक मे ही यज्ञ-सम्बन्धी 'अश्व' के विषय में "समुद्र एवास्य बन्धु समुद्रो योनि" ऐसा कहा गया है, अर्थात् समुद्र ही इस 'अश्व' का बन्धु तथा उत्पत्ति स्थान है।[3] इस यज्ञ-सम्बन्धी अश्व का उषा शिर है, सूर्य नेत्र है, संवत्सर आत्मा है इत्यादि।[4] स्पष्टतः यह अश्व कोई साधारण पशु न होकर निखिल ब्रह्म का रूप है। इस अतिप्रसिद्ध अश्व की 'योनि' पृथ्वी तथा आकाश को सब ओर से घेर कर रखनेवाला वैदिक 'समुद्र' है। जब पृथ्वी की ही उत्पत्ति समुद्र से हुई, तब पृथिवी के रत्न मणिश्रेष्ठ कौस्तुभमणि का भी समुद्र से निकलना स्वाभाविक था। ऋग्वेद में वृत्र के अनुचर तथा विश्वेदेव दोनो ही 'मणि' से सज्जित[5] कहे गये है।[6] दोनो का स्थान अन्तरिक्ष अथवा समुद्र ही है।

'समुद्र' से सभी कुछ की उत्पत्ति मन्थन द्वारा हुई। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' मे सोमरस के पात्र को मन्थि पात्र कहा गया है तथा यजमान को मन्थी।[7] यजुर्वेद (७।१८) में प्रजापति अर्थात् सृष्टि के उत्पादक को मन्थी कहा गया है। दूध या दधि के मथन से मक्खन या घृत निकलता है। अरणि के मथन से अग्नि का प्रादुर्भाव होता है। 'समुद्र' से हालाहल, अमृत इत्यादि उत्पन्न हुए, तो अवश्य इसके लिए 'समुद्र' का मथन किया गया। यह स्वभावतः महाशक्तिशाली देवासुरों ने ही किया। मथन के लिए मथानी चाहिए तथा एक रज्जु। मथानी मंदर पर्वत बना जो 'एरिडू-निपूर' से मिश्रित भुवनकल्पना के अनुसार 'समुद्र' में सारे लोगों को धारण करके खड़ा है। पर रज्जु के लिए तो किसी भौतिक पदार्थ की बनी रस्सी अपर्याप्त होती। यहाँ इस 'समुद्र' में स्थित

---

(१) बृ० उ० १।२ (२) बृ० उ० १।२ (३) बृ० उ० १।१ (४) बृ० उ० १।१ (५) ऋ० सं० [illegible] (६) ऋ० सं० [illegible] (७) तै० ब्रा० [illegible]

'सर्प' की कल्पना स्वाभाविक थी। समुद्रमन्थन की कथा के प्रचार के बहुत समय पूर्व से भारत ही नही, लगभग सभी प्राचीन देशो में आकाश, अन्तरिक्ष अथवा समुद्र में विशालाकृति सर्पों की कल्पना की गई थी। ऋग्वेद में इन्द्रशत्रु जलनिरोधक वृत्र को 'अहि' कहा गया है। निरुक्तकार ने अहि की व्याख्या इस प्रकार की है—"**अहिरयनात् एत्यन्तरिक्षे। अयमपीतरोऽहि। एतस्मादेव। निर्ह्रसितोपसर्ग आहन्तीति।**"[१] अहि वह है, जो आये (अन्तरिक्ष से—अर्थात् मेघ से)। दूसरा आनेवाला सर्प है। हनन करनेवाला हिंसक भी अहि है। अहि की अहिर्बुध्न्य (अन्तरिक्ष स्थित अहि) के रूप में देवताओ के साथ-ही-साथ प्रार्थना भी की जाती थी।[२] ईरान का 'अज्हि दह्हाक' कदाचित् वहाँ का कोई अत्याचारी शासक था, पर बैबीलोन में एक विशाल सर्पाकार समुद्री जीव बैबीलोन के प्रधान देवता 'या' का रूप माना जाता था।[३] चीन में तथा जापान में सर्परूप दैवी शक्तियो की पूजा होती आई है। मिस्र के 'महादेव' ओसाइरिस का एक रूप 'पृथ्वी को घेर कर समुद्र (ओकीनोस) में रहनेवाला मण्डलाकार' सर्प था।[४]

'अथर्ववेद' मे प्रत्येक दिशा एक-न-एक सर्प से रक्षित कही गई है। पूर्व दिशा का रक्षक 'असित' (कृष्णवर्ण) सर्प है। दक्षिण दिशा का रक्षक 'इराजी' नामक (टेढी कुण्डलीवाला) सर्प है। पश्चिम दिशा का रक्षक 'पृदाकू' (कुत्सित् शब्द करनेवाला) सर्प है। उत्तर दिशा का रक्षक 'स्वज' नामक (स्वजनशील) सर्प है। ध्रुवा दिशा (अर्थात् खगोल के ध्रुव विंदु की ओर की दिशा) का रक्षक 'कल्माषग्रीव' नामक (नीली गर्दनवाला) सर्प है। उर्ध्वा (ऊपर की) दिशा का रक्षक 'श्वित्र' नामक श्वेतवर्ण सर्प है। चीनी ज्योतिष तथा बैबीलोन के ज्योतिष में यह सर्प बहुधा तारामडलो के ही अनुमित रूप थे। भारत मे भी गीता के रचनाकाल तक तो अवश्य ही यह तारामडलो से सम्बद्ध हो चुके थे। अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के विराट् स्वरूप में ऋषियो (ताराओ) के साथ-साथ दिव्य उरगो (अर्थात् सर्पों) को भी देखा था। "**पश्यामि देवास्तव देव देहे। सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्। ब्रह्माणमीश कमलासनस्थ-मृषींश्च सर्वानुरगाश्च दिव्यान्।**"[५]

खगोल के उत्तर ध्रुव के समीप ही एक तारामडल 'ड्राको' नाम का है, जो ध्रुवविंदु को लगभग तीन ओर से घेरे हुए है। अब से दो-तीन हजार

---

(१) निरुक्तम् २।५।१७ (२) ऋ० स० ७।३४।१७ (3) Myths of Babylon and Assyria -p 62 (४) Myths of China and Japan-D A Mackenzie (५) गीता–११।१५

वर्ष पूर्व भी खगोल का उत्तर ध्रुव इसी मडल के समीप था। देवताओं का निवासस्थान 'मन्दराचल' रूपी ठोस आकाश, जो सभी ओर 'समुद्र' से घिरा है, सदा घूम रहा है तथा सर्पाकार 'ड्राको' नामक तारामडल इस महान् 'मथानी' की धुरी के चारो ओर रज्जु के समान लिपटा है। यही मडल वास्तव में 'वासुकि नाग' है या नही, यह निश्चित रूप से कहना सम्भव नही। विष्णु के शय्यारूप शेषनाग का वर्णन इस तारामडल से अधिक मिलता है, जैसा आगे बताया जायगा। प्राचीन भुवनसस्था के अनुसार 'खगोल' (मन्दराचल) स्थिर था एव सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे उसकी परिक्रमा करते थे। समुद्रमन्थन उस काल की कल्पना है, जब मदराचल स्थिर न होकर भ्रममाण था तथा उसके इस भ्रमण से ही 'समुद्र' का मन्थन हुआ, जिनसे हालाहल विष, अमृत इत्यादि की उत्पत्ति हुई। समुद्रमन्थन का वासुकि सर्प मिस्र के ओमाडरिस सर्प की भांति पृथ्वी को घेर कर रहनेवाला काल्पनिक महान् सर्प था।

अदिति तथा अन्य प्राचीन देशो की अदिति के समान देवियो ने, अपने पुत्र अथवा पिता को ही अपना पति बनाया। ऋग्वेद में दक्ष (कार्यकुशल) अदिति के पुत्र होकर भी अदिति के पति हुए तथा पिता भी। पुराणो में जनमत के आदरहेतु 'कश्यप प्रजापति' को अदिति का पति बनाया गया। इसके विपरीत 'ऐतरेय ब्राह्मण'[1] तथा अन्य ग्रथो में आदि पुरुष प्रजापति ने अपनें शरीर से ही अपनी पुत्री उत्पन्न की, फिर उसे अपनी पत्नी बनाया। यह पुत्री तथा पुत्र से विवाह करने की कथा का प्रचार स्वाभाविक था, क्योकि यदि सृष्टि का आरभ किसी 'पुरुष' देवता से हुआ तो फिर उनकी स्त्री भी उनके द्वारा निर्मित उनकी पुत्री हुई। इसी प्रकार यदि सृष्टि का आरभ किसी स्त्रीशक्ति से हुआ तो उन स्त्री के पति भी उनसे उत्पन्न उनके पुत्र हुए। ऋग्वेद की अदिति के पुत्र तथा पति 'दक्ष' ने सृष्टि करने में दक्ष होने के कारण ऐसा नाम पाया। भाष्यकारो ने सूर्य को ही ऋग्वेद का दक्ष माना है। मिस्र के आकाश की देवी 'नुट' के पति 'शु' भारत के 'परमैश्वर्यशाली देवराज इन्द्र' की भाँति आकाश तथा पृथ्वी के मध्यवर्ती देवता हैं। भाष्यकारो ने सूर्य को ही इन्द्र भी माना है[2]। निरुक्तकार के अनुसार एक ही देवता अपने भिन्न-भिन्न गुणो के कारण अनेक नाम से पूजे जाते हैं[3]। ऋग्वेद में दो स्थानो पर अदिति के साथ दिति का नाम आया है। चतुर्थ मडल के द्वितीय सूक्त के एकादश मन्त्र में अग्नि से कहा गया है,—"**दितिं च रास्वादितिमुरुष्य।**" सायनाचार्य ने यहाँ दिति का अर्थ 'दानशीलता' अथवा दानशील मनुष्य बताया है। इस मन्त्र में अग्नि से दिति को समृद्धिशाली बनाने तथा अदिति की रक्षा करने को कहा गया है। यहाँ कदाचित् इससे समुचित अर्थ यह होगा कि अग्निदेव खडनीया प्रकृति की विविध विभूतियो अथवा मनुष्य की खडनीया समृद्धि को बढाते है तथा अखडनीया तथा अनिर्वचनीया अखिल विश्व की मातृशक्ति अदिति की रक्षा करते है। इस मत्र में क्षणभगुर सासारिक भोगो को चाहनेवाले दैत्यो तथा नित्य अनश्वर देवताओ के भेद का बीज दीख पडता है।

पचम मडल, वासठवें सूक्त के आठवें मन्त्र में मित्र एव वरुण को अदिति और दिति दोनो को हम देखते हैं। ऋक्सहिता (७।१५।१२) में "**दितिश्च दाति वार्यम्**"— दिति मनोवाछित फल देती है। ब्राह्मणो में देवताओ तथा असुरो को एक दूसरे के विपरीत माना गया है तथा दैवी एव आसुरी प्रवृत्तियो का उद्गम एक होनें पर भी उनमें परस्पर द्वेष होने के कारण उन्हें एक दूसरे का भ्रातृव्य कहा गया।[4]

(१) १३।६। (२) यजुर्वेदभाष्यम्–महर्षि दयानन्द सरस्वती। (३) निरुक्तम् ७।११।५। (४) बृहदारण्यकोपनिषद् १।३।७।

रामायण काल तक दिति तथा अदिति इन दो पृथक् आदि नारियो की कल्पना परिपक्व हो चुकी थी[१]। दिति के पुत्र महावली तथा अदिति के पुत्र पराक्रमी एव धर्मनिष्ठ थे।

दिति शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है, पर सम्भवत यह अखण्डनीया अदिति के विरोधवाची शब्द के रूप में ही व्यवहार में आया। दिति नाम ईरान की धार्मिक कथाओ में तो नही आया है, पर 'दैत्य' शब्द देवताओ के समूह अथवा 'सम्मेलन स्थान' के अर्थ में व्यवहृत हुआ है[२]। जैसा पहले वताया जा चुका है, अति प्राचीन काल में देवता, असुर, दानव, एक ही थे। दैत्य भी आरभ में देवों से भिन्न नही थे। दैत्यो तथा देवताओ में वल तथा पराक्रम-सहित धर्मनिष्ठा का भेद था। ससार की अनेक प्राचीन जातियो की आदिमाता देवोचित तथा दैत्योचित दोनो गुणवाले सन्तान की माता थी। यूरोप की आदिम जातियो की देवमाता 'दानु' महावलशाली 'दानव' नामक देवताओ की माता थी[३]। दानु का पुत्र 'दाग्दा' अथवा 'क्रौम क्रुएच' भयावह देवता था, जिसकी पूजा भक्ति से नही, भय के कारण होती थी[४]। वाली द्वीप में देवी दानु, देवी गगा, गिरि पुत्री, दुर्गा तथा उमा शिव की स्त्रियाँ है।[५]

दिति केवल दैत्य ही नही, मरुतो की भी माता थी। ऋग्वेद मे मरुतो को सुदानव अर्थात् दानु के सुन्दर पुत्र भी कहा गया है। 'सुदानव' नाम अन्य देवताओ के लिए भी आया है, पर विशेपकर यह मरुतो का ही नाम है एव देवशत्रु भी स्वय 'दानु' है अथवा दानु की सन्तान दानव है। दिति के पुत्र दैत्य तो समुद्रमन्थन के पश्चात् सग्राम में देवताओ द्वारा नष्ट हो चुके थे। दिति से मरुद्गणो की उत्पत्ति की कथा आगे कही जायगी। पुराणो में दिति तथा अदिति के पति प्रजापति कश्यप थे। रामायण में, जिसका रचनाकाल पुराणो के पूर्व है, कश्यप प्रजापति को मारीच कश्यप कहा गया है। 'मारीच' सूर्य का नाम है। शतपथ ब्राह्मण[६] में सूर्य को 'करनेवाला' अर्थात् 'कूर्म' कहा गया है। कूर्म ही कच्छप अथवा कश्यप है। कार्य करने में कुशल अथवा दक्ष होने के कारण वही सूर्य 'दक्ष' भी है।

---

(१) रामायण १।४५।१५ (२) 'Then Ahura Mazda, the creator, convened an assembly with the spiritual yazatas in the FAMOUS Hiryana Vaejah at the goodly Daitya"—Mythology of All Races—Iran—P 307. (३) Egyptian Myth and Legend—p XXXIV. (४) "Great was the horror and scare of him"—Celtic Myth and Legend (५) Island of Bali—Mignel Covarrub as (६) ७।५।१।५

विष्णुपुराण में अदिति के साथ-साथ दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु तथा मुनि नाम की दक्ष-कन्याएँ कश्यप प्रजापति' को व्याही गई ।[1] दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए ।[2] जैसा पहले वताया जा चुका है—'हिरण्याक्ष' ऋग्वेद में सूर्य का ही नाम है । हिरण्य का सम्बन्ध आरभ में सूर्यादि 'दिव' तथा वृत्रादि 'आच्छादक' दोनो ही से था । श्रीमद्भागवत के अनुसार दनु से विश्वव्यापी अग्नि (अथवा सूर्यस्थित विश्वपोषक अग्नि) वैश्वानर का जन्म हुआ तथा वैश्वानर की चार सुन्दर कन्याएँ—उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा तथा कालका—हुईं । इनमें से पुलोमा तथा कालका से इनके पितामह कश्यप प्रजापति ने ही ब्रह्मा की आज्ञा से विवाह किया ।[3] इन अनेक माताओ की कल्पना 'आसुरी' वृत्तियो के वर्गीकरण का ही फल था । ये सभी माताएँ मनुष्याकृति नही थी । इनका मुख या शरीर भिन्न-भिन्न पशुओ की आकृति का था । चीनी पौराणिक कथाओ की 'पश्चिम आकाश की देवी' व्याघ्ररूपिणी थी ।[4] मिस्र की देवमाता 'नुट' भारतीय 'सुरभि' की भाँति गोरूपिणी थी ।[5] पर ये सभी माताएँ वस्तुत अखिल भुवन की उत्पादनशक्ति अर्थात् मातृशक्ति का ही प्रतिरूप थी । बृहदारण्यक में इन भिन्न-भिन्न रूपधारिणी माताओ का उद्भव निम्नलिखित प्रकार से वताया गया है—"आदि पुरुष प्रजापति रममाण नही हुआ । . उसने दूसरे की इच्छा की । . उसने अपने को दो भागो में विभक्त कर दिया । उससे पति और पत्नी हुए । वह उससे सयुक्त हुआ । उसीसे मनुष्य उत्पन्न हुए । . उसने (स्त्री ने) सोचा, अपने ही से उत्पन्न करके यह क्यो मुझसे समागम करता है । मैं छिप जाऊँ । अत वह गौ हो गई । तो दूसरा (अर्थात् प्रजापति) वृषभ हो गया । इससे गाय-बैल उत्पन्न हुए । तव वह स्त्री घोडी हो गई तथा (पुरुष) घोडा हो गया "इत्यादि ।[6]

सिद्धान्त ज्योतिष काल में अदिति को सूर्य के क्रान्तिवलय (Ecliptic) का ही पौराणिक नाम समझा जाता था ।[7] सभी ग्रहो का आधार होने के कारण इसे ग्रहो अर्थात् देवताओ का मातृत्व प्राप्त था । वास्तव में अदिति क्रान्तिवलय से भी परे है । 'मोक्षमुल्लर' ने अदिति को द्यावा-पृथ्वी से परे अनिर्वचनीय अस्तित्व माना है ।[8] इसके विपरीत मैक्डोनेल ने "आदत्ते रसान्"

(१) विष्णु पुराण १।१५।१२६-१२७ (२) विष्णु पुराण १।१५।१४१ (३) भागवत ६।६।२६-३४ (४) Myth of China and Japan—P 236-237 (५) Egyptian Myth and Legend—XXXIV (६) बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।३४ (७) Early Astronomy and Cosmology P 55 (८) Contributions to the Science of Mythology P 557

निरुक्त के अनुसार रस या जल को सोखनेवाले आदित्य की काल्पनिक माता को अदिति माना है ।[१] इस व्युत्पत्ति के अनुसार आदित्य शब्द पहले बना, फिर इससे अदिति शब्द की उत्पत्ति हुई । मोक्षमुल्लर के अनुसार भी आरभ में आर्यों के देवपिता द्यौस् की स्त्री 'स्वारा' आकाशदेवी थी, जो यूरोप में 'ज्रिअस' की स्त्री हेरा बनी । भारत में अदिति ने प्राचीन देवमाता 'स्वारा' का स्थान ग्रहण किया ।[२]

---

(१) Religion and Philosophy of the Veda--Keith p 217
(२) Contributions P 505

चतुर्थ अध्याय

अग्नि-चरित्र

अग्नि देवता के भौतिक अर्थ में तो कोई सन्देह नहीं हो सकता। फिर भी वेद तथा ब्राह्मणो में अग्नि की वन्दना अथवा वर्णन से सारे हिन्दू देवी-देवताओ के भौतिक अर्थ पर प्रकाश पडता है। अत इसके विषय में कुछ कहना आवश्यक है।

ऋग्वेद का आरम्भ अग्नि की वन्दना से होता है। नीचे ऋग्वेदोक्त अग्नि के कुछ अशो का हिंदी रूपान्तर दिया जाता है—अग्नि से धन होता है। अग्नि बडे-बडे कार्यों का करनेवाला है। अग्नि ऋत (धर्म) का गोपा (रक्षक) है।[1] अग्नि देवताओ का दूत है। अग्नि की गति तीव्र है। अग्नि दिव्य तथा पवित्र है।[2] अग्नि अपना ही पुत्र होने के कारण तनूनपात् है। अग्नि यज्ञ मे मधु (मधर हवि) भक्षण करने आता है। अग्नि मनुष्यो पर शासन करने के कारण नराशस है। अग्नि प्रिय है। अग्नि देवताओ को रथ में बिठाकर लाता है। घृत के पृष्ठ पर स्थित वर्हि नामक अग्नि में 'अमृत' (घृत) अथवा अमर देवताओ का दर्शन होता है। इला (स्तुति), सरस्वती (वाक्) तथा मही नामक तीन प्रकार की अग्निदेवियाँ, देवो की पत्नी है।[3] गोरस अर्थात् घृत अग्नि को प्रिय है (**गोपीथाय प्रहूयसे**)।[4] अग्नि ही अगिरस् है, जिससे देवताओ की उत्पत्ति हुई। अग्नि शिव (सुन्दर-कल्याणकारी) है। अग्नि देवताओ का सखा है। अग्नि की माताएँ दो हैं। (आकाश तथा पृथ्वी अथवा दो काष्ठ खण्ड जिनकी रगड से अग्नि उत्पन्न होता है।) अग्नि के भय से रोदसी (द्यावापृथिवी) कॉप जाती है। अग्नि वसु अर्थात् निवास का हेतु, अथवा लोगो को वसानेवाला है। अग्नि मननशील 'मनु' के लिए आकाश से प्रकट हुआ। अग्नि ने 'पुरूरवा' से अनेक पुण्य कार्य कराये। अग्नि मनोवाछित अभिलापाओ का वर्पण करनेवाला वृषभ है। अग्नि के अर्चन से वीरपुरुप शत सहस्र की सख्या में

(१) ऋ० सं० १।१ (२) ऋ० स० १।१२ (३) ऋ० स० १।१३ (४) ऋ० स० १।१६

में 'राय' (रै अर्थात् धन) प्राप्त करता है। अग्नि को देवताओ ने 'नहुष' नामक प्राचीन नरराज की सेना का सेनापति बनाया था। अग्नि गौओ का अनिमेष रक्षक है। अग्नि 'अवृक' अर्थात् वृक (हिंसक) का नाशकर्ता है[१]। अग्नि पृथ्वी पर विष्णु, मित्र तथा अर्यमा का दूत है। अग्नि की सहायता से देवताओ ने (जल-निरोधक) वृत्र का हनन किया तथा पृथ्वी एव आकाश को मरणशील मनुष्यो के निवास के लिए फैलाया[२]। अग्नि के रहने से सभी देवता हर्षित होते हैं। वैश्वानर अग्नि मनुष्यो में क्षुधारूप से स्थित है। यह आकाश के ऊपर भी है तथा पृथ्वी के गर्भ में भी। यह रोदसी (द्यावापृथिवी) का शिर है। पर्वत आदि में जो धन है, मेघ में जो जल है अथवा ज्वालामुखी पर्वतो मे जो उत्पादन बढानेवाले पदार्थ हैं, उनका स्वामी अग्नि है। रोदसी (द्यावापृथ्वी) अपने पुत्र वैश्वानर अग्नि को उत्पन्न करके इतनी बडी हो गई। विद्युत् रूपी वैश्वानर अग्नि-मेघो को भेद कर उनसे जल की वृष्टि कराता है[३]। सूर्य तथा पृथिवी अपने-अपने स्थान पर अग्नि द्वारा ही स्थिर किये गये हैं[४]। विद्युत् रूपी अग्नि जल के गर्भ में, दावानल रूपी अग्नि वृक्षो के काष्ठ में तथा जठरानल रूपी अग्नि जीवधारियो के शरीर में रहता है[५]। अग्नि के प्रताप से गायो का दूध बढ जाता है[६]। अग्नि ही पृथ्वी पर सात धन देनवाली नदियो को लाता है। यज्ञ का अग्नि ही वर्षा का कारण है, जिससे ये नदियाँ अपना जल प्राप्त करती हैं[७]। अग्नि ने ही देवशुनी सरमा के रूप में इन्द्र को उस स्थान का पता बताया था, जहाँ 'वल' ने गायो (अर्थात् मेघो) को छिपा रखा था[८]। अग्नि सभी पशुओ का 'गोपा' अर्थात् रक्षक है। यह गो तथा वाजस् अर्थात् अन्न का स्वामी ईशान है। अग्नि का तेज 'महिष' अर्थात् महान है[९]। अग्नि कृष्ण है, क्योकि जहाँ से होकर यह जाता है, वहाँ इसका मार्ग कृष्ण वर्ण हो जाता है[१०]। प्रथम अग्नि पृथ्वी का है जिससे भोजन पकता है। द्वितीय अग्नि अन्तरिक्ष का है जो पृथ्वी से जल को आकर्षित करता है, फिर उसे वृष्टि के रूप में बरसाता है। तृतीय अग्नि आकाश का है जो सात माताओ अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र के सात ताराओ के बीच निवास करता है। अग्नि दानशील 'दानव' है[११]। अग्नि वृषभ (साढ अथवा वाछित कामनाओ को बरसाने वाला) है। यह धर्मात्माओ के रै अर्थात् धन को बढाता है[१२]। अग्नि

---

(१) ऋ० स० १।३१ (२) ऋ० स० १।३६ (३) ऋ० स० १।५९ (४) १।६।७ (५) १।७०।४ (६) १।७०।१० (७) १।७२।६–८ (८) १।७३।८ (९) १।७९ (१०) १।१४०।४–५ (११) १।१४१।९ (१२) २।१।३

रौरव शब्द करने वाला रुद्र है, शत्रुओ को निरस्त करनेवाला असुर है[१]। अग्नि यज्ञ करनेवालो के लिए देवमाता अदिति है,[२] स्तुति से बढनेवाली भारती (विद्या) है, शतसख्यक हिम अथवा हिम की भाँति पिघल जानेवाले कालकी इला (पृथिवी) है[३]। देवताओ ने अग्नि को पृथिवी की ओर फेका[४]। भृगुओ ने अर्थात् चमकीले ताराओ ने उसे बीच में ही रोक लिया[५]। अग्नि से सात प्रकार के प्रकाश निकलते है[६]। अग्नि देवताओ का गोप अर्थात् रक्षक है[७]। जब अग्नि को राधस् (अर्थात् धन या अन्न) भेंट किया जाता है तब अग्नि देवताओ से उनकी प्रशसा करता है। अग्नि रयिपतियो मे अर्थात् धनवानो मे, सबसे श्रेष्ठ है[८]।

अग्नि जल का पौत्र है, क्योकि जल से उद्भिद् होते हैं, उनसे अग्नि होता है[९]। जल का पौत्र 'अपानपात्' मेघ में उसी प्रकार वर्तमान है, जिस प्रकार गर्भ में शिशु। जल के रूप में यह मेघ से उत्पन्न होता है[१०]। अग्नि का पिता अन्तरिक्ष है। अग्नि ने ही सात नदियो को बहाया[११]। अग्नि से वाक् उत्पन्न हुई। अग्नि शिवो का सखा है[१२]। अग्नि देवताओ का सारथी है तथा उनका पुरोहित भी[१३]। वैश्वानर अग्नि का गर्जन सिंह के समान है[१४]। अग्नि यज्ञ का पिता है तथा यज्ञ करनेवालो का असुर है, अर्थात् यज्ञ करनेवालो के शत्रुओ का अथवा उनकी त्रुटियो का हिंसक है[१५]।

अग्नि ही वह रथ है जिसमें चन्द्रमा भ्रमण करते हैं[१६]। अग्नि के प्रताप से ही पाँच अध्वर्यु (वैदिककाल की पाँच जातियाँ, पच जना) तथा सात विप्र (सप्तर्षि) अपने निश्चित पद पर आरूढ रहते हैं[१७]। अग्नि पुरुदस—अनेक कर्मोंवाला है। इला नामक नारीरूप अग्नि से निरन्तर साधना करनेवाले के महान् कर्म सिद्ध होते हैं[१८]।

इन्द्र तथा अग्नि अथवा इन्द्र के अग्नि ने दासो द्वारा शासित नव्वे अथवा बहुसख्यक पुरो को ध्वस कर डाला[१९]।

अग्नि देवताओ का आवाहक है। अग्नि सोमपान (अथवा घृतपान) से मतवाला हो जाता है। अग्नि विधाता है। विद्युत् अग्नि का रथ है। ज्वालाएँ अग्नि के केश हैं। अग्नि बल का पुत्र है, क्योकि बलपूर्वक अरणीमथन से इसकी उत्पत्ति है। अग्नि पृथिवी में वर्तमान होकर भी अन्तरिक्ष पर्यन्त अपना तेज विकीर्ण करता है[२०]।

---

(१) २।१।६ (२-३) २।१।११ (४) २।२।३ (५) २।४।२ (६) २।५।२ (७) २।६।२ (८) २।६।४ (९) २।३५।१ (१०) २।३५।१ (११) २।३५।१३ (१२) ३।१ (१३) ३।२।८ (१४) ३।२।११ (१५) ३।३।४ (१६) ३ ३।५ (१७) ३।७।७ (१८) ३।७।११ (१९) ३।१२।६ (२०) ३।१४।१।

मित्र, वरुण, विश्वेदेव, मरुत् सभी अग्नि की स्तुति करते हैं। सुन्दर अर्य, अर्थात् स्वामी, प्रेरक या शक्तिशाली, होने के कारण अग्नि ही सूर्य है। अग्नि सामर्थ्यवान् होने के कारण दक्ष है[1]।

अग्नि सूर्योदय के पहले तथा पश्चात् दोनो ही काल में अग्निहोत्रादि कर्म करनेवालो का गोपा है अर्थात् उसकी रक्षा करता है। अग्नि मनोवाछित कामनाओ का वरसानेवाला होने के कारण वृप तथा ज्योतिष्मान् होने के कारण भानु है। अतएव, अग्नि वृषभानु है। वृषभानु से रै अर्थात् धन उत्पन्न होता है। कृष्ण अर्थात् रात्रि की शोभा अग्नि की ज्वालाओ से ही होती है[2]। हे अग्नि, तुम पूरव के जो अनार्य शत्रु हैं, उनका विनाश करो तथा उन्हें भस्म करो[3]।

असुर अर्थात् वेसुध काष्ठ के गर्भ से अग्नि की उत्पत्ति हुई[4]। अग्नि का पिता अन्तरिक्ष तथा इसकी माता पृथ्वी है। अग्नि के न तो हाथ है न पाँव। गौ की इच्छा रखनेवाले अगिरसो को अग्नि ने गौयुक्त व्रज अर्थात् चरागाह दिखाये।[5]

देवताओ का आधार अग्नि देवमाता अदिति के समान है[6]।

'सुराधा' अग्नि, अर्थात् सुन्दर रै अथवा धन से ओतप्रोत अग्नि, अपने सुन्दर रथ में विठा कर अर्यमन्, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण तथा अश्विनी-कुमारो को यज्ञ की हवि ग्रहण करने के हेतु लाता है[7]।

अग्नि असुर है। यज्ञ को गो, मेप, अश्व तथा नर से युक्त करके प्रजा तथा धन की वृद्धि करता है[8]। अग्नि का सहचर (अर्थात् उसका गमन मार्ग) कृष्ण है। अग्नि का गमन मार्ग कृष्ण वर्ण हो जाता है[9]। मधुमान अग्नि समुद्र के फेन की भाँति मेघस्थित जलराशि से उत्पन्न हुआ। अग्नि जल का घृत है तथा देवताओ की अमृत ग्रहण करनेवाली जिह्वा है। अग्नि के चार दिशा अथवा वेदरूपी शृग हैं, प्रात, मध्याह्न तथा सध्या रूपी तीन पाँव हैं, सूर्य तथा चन्द्रमा रूपी दो शिर हैं, सात वर्ण के प्रकाश रूपी इसके सात हाथ हैं तथा आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में यह तीन प्रकार से वँधा है। अग्नि कामनाओ की वृष्टि करनेवाला वृषभ है, तथा यह रौरव शब्द करनेवाला रुद्र है[10]। जब 'पणियो' ने गौ (अर्थात् जल) को तीनो प्रकार से आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी में छिपा रखा था तब अग्नि ने ही सूर्य, इन्द्र तथा वायु से उस गौ

---

(१) ३।१४।४–७ (२) ३।१५।२–३ (३) ३।१८।१ (४) ३।२९।१४ (५) ४।१ (६) ७४।२।४
(७) ४।२।५ (८) ४।२।५ (९) ४।७।९ (१०) ४।५८।१ तथा ३

(अर्थात् जल) का उद्धार कराया[१]। जब यह अग्नि इस समग्र जगत् के प्रतिबन्धक अन्धकार रूपी रज्जु अथवा पाश को छिन्न करता है तब अग्नि के उज्ज्वल गो अर्थात् किरण से जिस किसी वस्तु का स्पर्श होता है, वह पवित्र हो जाती है[२]। देवकुमार अग्नि को महिषी अरणी ने अपने गर्भ में अनेक वर्षों तक रखा[३]। राजा अग्नि वसुपति अर्थात् धन का स्वामी है। यज्ञ में उसकी प्रमुख रूप से वन्दना होती है। उसकी सहायता से युद्ध में जय प्राप्त होती है[४]। अग्नि ने आर्यों की सेना का प्रधान सेनानी बन कर दस्युओ का विनाश किया तथा आर्यों की रक्षा की[५]।

जिसकी लपटें तीक्ष्ण हैं तथा रूप महान् है, जो तृणादि भक्षण करता हुआ अश्व के समान सुशोभित होता है, वह अग्नि कुठार के समान तीक्ष्ण ज्वालाओ को वृक्षो पर गिराता हुआ अपनी उष्ण जिह्वाओ से द्रव्य को पिघलाता हुआ महान् तरुवरो को भी धराशायी करता जाता है। जब यह हमारे शस्त्रास्त्रो को तीक्ष्ण करता है, तब इससे वाणवर्षा के समान स्फुलिंग झडते है। यह विचित्र गति अग्नि रात्रि को शत्रुओ से उसी प्रकार हीन कर देता है जैसे वृक्ष को पक्षियो से। इसकी गति रघु अर्थात् तीव्र है[६]।

वैश्वानर अग्नि के तेज से जल के सार से द्युलोक के स्थान में नक्षत्र बने। उसीकी मूर्धा में सभी लोको का वास है। उसीसे वृक्ष की शाखाओ के समान सात नदियाँ निकली है[७]।

यह कर्म में सलग्न करने-वाला दिवसरूपी अग्नि कृष्ण वर्णा रात्रि को अपने में धारण करता है, अतएव यह कृष्ण है तथा श्वेत अथवा अर्जुन प्रकाश से परिपूर्ण होने के कारण यह अर्जुन भी है। अन्य ज्ञातव्य विभूतियो के साथ यह कृष्णार्जुन अग्नि आकाश तथा पृथ्वी में सर्वत्र ही वर्तमान है। नित्य जन्म लेनेवाला सूर्य रूपी वैश्वानर अग्नि हमारा राजा है। अग्नि सभी रूपो में अपनी ज्योति से अन्धकार को नष्ट करनेवाला है[८]। वीरवर अग्नि जिसकी अनेक महान् कृतियो की प्रशसा है, अपने पराक्रम तथा पुण्य से मनुष्यो की रक्षा के लिए ही पृथिवी पर उतरा है। अग्नि कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण है। अपनी शक्ति से ही उसने जगत् के आच्छादक अन्धकार अथवा जलनिरोधक वृत्र का वध किया[९]।

अग्नि ने न केवल जलनिरोधक वृत्र की हत्या की, वरन् दस्युओ के पुरो का भी नाश किया[१०]। अग्नि रणो में धनजय अर्थात् धन को जीतकर लानेवाला है[११]।

---

(१) ४।५८।४ (२) ५।१।३ (३) ५।२।२ (४) ५।४।१ (५) ५।४।६ (६) ६।३।४-५
(७) ६।७।६ (८) ६।९।१ (९) ६।१३।५ (१०) ६।१६।१४ (११) ६।१६।१५।

वृक्ष तथा नगरो को छेदनेवाले अग्नि को नमस्कार है। अग्नि समस्त भुवन का राजा होने के कारण सम्राट् है, वलवान होने के कारण असुर है । अग्नि वीरों में अतिशय वीर है । अग्नि पृथ्वी तथा आकाश का राजा है । पुरो के नाश करनेवाले पुरदर अग्नि ने अनेक वीरतापूर्ण कर्म किये ।[1] हे अग्नि! वसुओ के साथ तुम हमारे इस यज्ञ में इन्द्र को वुला लाओ । रुद्रो के साथ तुम महान रुद्र को भी वुला लाओ । आदित्यो के साथ तुम विश्वमाता अदिति को भी वुला लाओ। मन्त्रो के साथ तुम विश्व के पूजनीय वृहस्पति को भी वुला लाओ ।[2] युवक अग्नि यश की इच्छा से यज्ञ करनेवालो को अश्वरूपी राधाओ (अर्थात् धनो) से युक्त करता है तथा असख्य पुरो की रक्षा करता है ।[3]

अग्नि जो आकाश तथा पृथ्वी में सर्वत्र स्थित है, वह इनका पुत्र है तथा पिता भी है ।[4]

सभी धर्मात्मा अग्नि की उपासना करते है । अपनी कृष्णा तथा अर्जुना अर्थात् कृष्ण वर्ण तथा श्वेतवर्ण ज्वालाओ से अग्नि समग्र विश्व की शोभा को धारण करता है ।[5]

देवशिल्पी त्वष्टा अग्नि से ही जलो में उत्तम सोमरस के धारण करने का पात्र वनाता है तथा शत्रुओ को नष्ट करनेवाले परशु की धार को भी तीक्ष्ण करता है ।[6]

अग्नि ने मनुष्यो के हित के लिए पर्वत सरीखे धनो को जीता तथा दस्युओ एव अन्य उपद्रवकारी दुष्टो का नाश किया ।[7] अग्नि अनेक हनुओ अर्थात् दाढीवाला हनुमान है तथा इसके सहस्रो नेत्र है ।[8] अग्नि सदा चलायमान अतिथि है तथा आत्मा को सातो लोको के पार ले जाता है ।[9] यह तो ऋग्वेदोक्त अग्नि की प्रशसा हुई। यजुर्वेद में भी अग्नि को कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण कालिख का उत्पादक कहा गया है ।[10] यजुर्वेद के मन्त्रो में अग्नि विष्णु का शरीर है तथा अतिथि का आतिथ्य है । अग्नि अनेक सुखो का दायक उर्वशी है । अग्नि अनेक शास्त्रो का शिक्षक पुरूरवा भी है ।[11] अग्नि सुख का उत्पादक होने के कारण शिव है । सभी दिशाओ को शिव अर्थात् सुखकर वनाता हुआ यह अग्नि आकाश में (सूर्य रूप से) आता है । आकाशिक जल में स्थित यह सूर्य रूप अग्नि आकाश को सर्वत्र सिंचित करता हुआ आता है ।[12]

अथर्ववेद के अनुसार अग्नि की उत्पत्ति सोने के रगवाले जल मे हुई। सोने जैसा रंगवाला स्वच्छ पवित्र करनेवाला वह जल जिसमें सूर्य तथा अग्नि उत्पन्न

---

(१) ७।६।१–२ (२) ६।१०।४ (३) ७।१६।१० (४) १०।१।७ (५) १०।२१।३ (६) १०।५३।६ (७) १०।६९।६ (८) १०।७९।१ तथा ५ (९) १०।१२२।१ तथा ३ (१०) वा० स० २।१ (११) वा० सं० ५।१–२ (१२) यजुर्वेद १३।२

हुए अर्थात् जिसने सूर्य तथा अग्नि को गर्भ में रखा, वह जल हमें सुख एव शान्ति दे। जिस जल में राजा वरुण मनुष्यो का पाप-पुण्य देखते हुए विचरण करते है, उसी जल ने अग्नि को गर्भ में रखा।[१] पृथ्वी गो है तथा अग्नि उसका बछडा है। अग्नि से आकृष्ट होकर ही पृथिवी कामनाओ को देनेवाली कामधेनु होती है।[२]

वेदमत्रो के उपर्युक्त अनुवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में अग्नि को कृष्ण कहते थे तथा अर्जुन भी। देवताओ की सेना का सेनापति, कुमार, जल अथवा जलमयी गगा के गर्भ से उत्पन्न बलरूपी रुद्र का पुत्र, स्वय रौरव शब्दकारी रुद्र, विकराल दाढोवाला हनुमान, सहस्रो नेत्रोवाला परमैश्वर्य-शाली देवता होने के कारण इन्द्र, ये सब अग्नि ही थे। आकाश में अग्नि का स्थान कृत्तिका नक्षत्र था। जहाँ उस समय का वसन्त-सम्पात था तथा जहाँ से नक्षत्रो की गणना आरभ होती थी। अग्नि विश्वव्यापी है। अग्नि पहाडो को गिरा सकता है तथा वृक्षो को भी। अग्नि की लपटें परशु जैसी है। अग्नि महान्‌बलशाली है। अग्नि रघुगामी है। अग्नि धर्म का गोप अर्थात् रक्षक है। इस प्रकार भौतिक अग्नि की वेदोक्त वन्दना में कृष्ण, अर्जुन, हनुमान, कार्त्तिकेय, सहस्राक्ष इन्द्र इत्यादि पौराणिक देवताओ के चरित्र का सूत्रपात दिखाई देता है। रघु अग्नि के कुल में ही राघव राम की उत्पत्ति हुई।

जल में अग्नि है अथवा आकाश से अग्नि पृथ्वी पर उतरी, ऐसे वेदोक्त मन्त्रो का एक आधनिक अमरीकी लेखक ने वडा ही विचित्र अर्थ लगाया है। इनके अनुसार यह जल में स्थित अग्नि धूमकेतुओ के पुच्छ से पृथ्वी पर जलने-वाले तरल पदार्थों की वर्षा के रूप में आया था। धूमकेतु के पुच्छ वाष्पीभूत उदागारो से वने है तथा यदि कोई धूमकेतु पृथ्वी के वायुमडल के समीप आ जाय तो यह उदागार जलते हुए तरल पदार्थों के रूप में पृथ्वी पर गिरेंगे। शुक्र ग्रह के वायुमडल में उदागार है। इस अमरीकी लेखक वेलीकोवस्की (Velikovsky) के अनुसार शुक्र ग्रह पहले एक धूमकेतु था तथा ईसवी सन् से १००० से कुछ अधिक वर्ष पूर्व वह पृथ्वी के अत्यन्त समीप आया, जिससे प्रलयकाल के दृश्य उपस्थित हुए, जिनमें आकाश से जलनेवाले तरल पदार्थों की वर्षा भी एक थी।[३] इस लेखक ने देश-विदेश के प्राचीन ग्रन्थो के अनुवाद से सकलन करके अपने सिद्धान्त की पुष्टि की है, परन्तु इसके सिद्धान्त के विप-रीत भी ऐतिहासिक सामग्री वर्तमान है। फिर इसने इन ग्रन्थो में से यत्र-तत्र

(१) अथर्ववेद १।६।५।१–२ (२) अथर्ववेद ४।८।४।२ (३) Worlds in Collision-Collancz

कोई एक भाग ले लिया है तथा अन्य अनेक भाग जो इनके सिद्धान्त के विपरीत हैं, उन्हें छोड दिया है । उदाहरणार्थ शुक्र को अथर्ववेद मे वृपभ कहा गया है, जिसका अगरेजी अनुवाद बुल (Bull) अर्थात् साँड हुआ । यदि शुक्र आरभ में धूमकेतु होकर पृथ्वी के समीप आया तो इसका आकार दो सीगवाले पशु के सिर जैसा रहा होगा । इससे इस लेखक ने साँड की पूजा का आरभ माना । पर वेदो में तो लगभग सभी देवताओ को वृपभ अर्थात् कामनाओ को बरसानेवाला कहा गया है । इसी प्रकार जल मे अग्नि का होना सभवत मध्येशिया के मिट्टी-तेल के कुओ के स्मरण का फल हो, पर ऋग्वेद में अपस् शब्द तरल जल के अर्थ में नही, वरन् प्राय अर्वाचीन विज्ञान के सर्वव्यापी तरल ईथर के अर्थ में व्यवहृत हुआ है जिससे सभी कुछ की उत्पत्ति हुई, अत अग्नि की भी ।

अगरेजी-पुस्तक प्रागैतिहासिक भारत (Prehistoric India[1]) के लेखक स्टुआर्ट पिगट ने ऋग्वेदकालीन आर्यों को बर्बर तथा असभ्य माना है, जिन्होने सभ्य अनार्यों के नगरो को अग्नि से जला डाला । परन्तु अग्नि का यह प्रयोग ऋग्वेदकालीन आर्यों तक ही सीमित नही है । ससार के सभी देशो में युद्ध में शत्रु के नगरो को जलाया गया है तथा अतिशय सभ्य आधुनिक समृद्धशाली देश एक दूसरे को (Incendiary Bomb) इन्सेन्डीअरी बम अर्थात् जलानेवाला बम तथा इससे भी भयकर दाहक अणुबम एव उद्जन बम से ही दूसरे देशो को जला देने की चेष्टा कर रहे है । युद्ध करनेवाली सभी जातियो ने शत्रुओ को परास्त करने में अग्नि की सहायता ली है । सभवत आर्यों ने भी ऐसा किया था तथा उनके द्वारा अग्निपूजा का एक प्रधान कारण यह भी हो ।

पञ्चम अध्याय

देवराज इन्द्र

इन्द्र विशेषरूप से वैदिक आर्यो के परमैश्वर्यशाली देवता है । वृत्रहन् वह्राम अथवा राम के रूप में ईरान तथा 'वाह्गन' एव पराक्रमी 'हरकुलेश' के रूप में मध्यपूर्व तथा यूरप में भी इन्द्र की पूजा हुई तथा वरुण, मित्र एव नासत्य के सात इन्द्रनाम से भी यतमित्तानी राजाग्रो के देवता रहे, पर भारत में ही ये देवताग्रो के अधिपति हुए । कदाचित् इन्द्र का वृष्टि से सम्बन्ध तथा भारत में कृषि के हेतु वृष्टि का महत्व, ये ही इन्द्र की प्रधानता के कारण हुए ।

निरुक्तकार ने अनेक प्रकार से इन्द्र की व्याख्या की है । इन्द्र इरा तृणातीति=इन्द्र अर्थात् अन्न के बीज को वृष्टि द्वारा अकुरित करानेवाला है[1] इरा ददातीति वा, इरा दधातीति वा । इन्द्र इरा अर्थात् अन्न को देता है वा धारण करता है । यह वृष्टि द्वारा इरा का स्वामी 'ऐरावत' अर्थात् मेघरूपी हस्ती पर आरूढ है । ऐरावत भी इरा का ही वर्द्धन करनेवाला है । वृष्टि का यह देवता इन्द्र, विश्व को द्युतिमान् करनेवाला इन्धन सूर्य भी है । इन्वे भूतानीति वा । यही इन्द्र निरुक्त के इन्दवे द्रवतीति, इन्दवे रमतीति सूत्रो के अनुसार चन्द्रमा में दिखाई देनेवाला मनुष्य अर्थात् स्वय चन्द्रमा भी है, जो सोमरूप[2] से जल का सार तथा उद्गम है । यह सव 'इद', जिसने वनाया अथवा चेतनाशील किया, वह परमैश्वर्यशाली देवता भी इन्द्र है । इद अर्थात् यह सब कुछ जो देखता है, वह भी इन्द्र है। यह सव कुछ देखने के लिए अनेक आँखो का होना स्वाभाविक है। अत इन्द्र ही पीछे चलकर सहस्राक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुए । फिर इद अर्थात् इस शत्रु को विदीर्ण करनेवाला वीरवर सेनानी भी इन्द्र है ।

मोक्षमुल्लर के अनुसार इन्द्र शब्द का अर्थ आरभ में इदु अर्थात् वर्षा की वूदो का वनानेवाला था । पर यही इन्द्र वज्र धारण करनेवाले, जलनिरोधक

---

(1) [illegible] (2) Contributions P. 115

वा आच्छादक वृत्र का वध करके गो अर्थात् पोषक जलराशि वा प्रकाश किरणो का, अतएव मनुष्यमात्र का उद्धार करनेवाले थे । इन्ही कर्मों के कारण इन्द्र के नाम की अन्य व्याख्याएँ होने लगी ।

ऋग्वेद के लगभग चतुर्थांश मन्त्र इन्द्र की वन्दना मे ही कहे गये हैं । इन्द्र चित्रभानु है । उँगली से निचोडे हुए सोमरस का पान करने को यह विचित्र सौन्दर्यवाला देवता आता है ।[1] इन्द्र तीव्र गतिवाला तूतुजान है । इन्द्र हरिव है अर्थात् जल को हरनेवाली सूर्य-किरणो पर अथवा घृत को हरनेवाली अग्नि की लपटो पर आरूढ होकर यज्ञ में आता है ।[2] सुन्दर कर्मों को करनेवाला इन्द्र हमारा रक्षक है । नित्य दूध देनेवाली गाय के समान नित्य सुख-दायक इन्द्र हमारे द्वारा पूज्य है ।[3] शतसख्यक क्रतु अर्थात् यज्ञ अथवा कर्म को करनेवाले इन्द्र ने सोमरस पान करके सघन वृत्र को नष्ट कर डाला अर्थात् घनीभूत जलनिरोधक मेघो को नष्ट करके उनका जल पृथ्वी पर बरसा डाला ।[4]

इन्द्र के हरनेवाले हरि अश्वो अर्थात् चमकनेवाली सूर्य-किरणो या अग्नि की लपटो को देखकर शत्रु तिरोहित हो जाते हैं ।[5]

इन्द्र के अनुशासन से सूर्य तथा अग्नि स्थावर एव जगम सृष्टि को अपने-अपने कर्मो मे नियुक्त करते हैं। इन्द्र ही आकाश को ज्योतिष्मान् सुन्दर ताराओ से सुशोभित करता है ।[6]

इन्द्र ही अचेतन को चेतन करते हुए तथा अरूप को रूपवान् करते हुए नित्य उषा से उत्पन्न होनेवाला सूर्य है ।[7] अपने हरणशील हरि अर्थात् जल अथवा घृत को हरनेवाले रश्मिसमूह अथवा तेजरूपी अश्वो पर आरूढ इन्द्र सभी दिशाओ से हवि ग्रहण करने के हेतु आता है । इन्द्र का रग सोने जैसा है । इन्द्र का आयुध वज्र है ।[8] इन्द्र ने ही उपासको के हित के लिए सूर्य को आकाश में उगाया है । सूर्य के गो (अर्थात् किरणो) से इन्द्र, पर्वत-अर्थात् मेघ को परिचालित करता है ।[9]

पाँच लोको में एक इन्द्र ही मनुष्यो को वसु अर्थात् धन से परिपूर्ण करता है ।[10]

---

(१) ऋग्वेद १।३।४ (२) १।३।६ (३) १।४।१ (४) १।४।८ (५) १।५।४ मोक्षमुलर के अनुसार हर=चमकना (Contributions) (६) १।६।१ (७) १।६।३ (८) १।७।२ (९) १।७।३ ऋग्वेद में गो के तीन अर्थ हैं, एक गो पशु, एक दुधारु गाय की भाँति जल देनेवाली मेघ-राशि, उषा वा प्रकाश-किरण जो गौओं के साथ साथ प्रात काल को व्रज अर्थात् विचरण करने निकलती है (Max Müller-Contributions) P 761 (१०) १।७।९

इन्द्र की चोट से जलनिरोधक वृत्र अर्थात् मेघ रो उठा। इन्द्र हमारा तथा हमारे अश्वो का रक्षक है।[१] इन्द्र का वल आकाश जैसा असीम है।[२]

इन्द्र सोम (अर्थात् एक लता विशेष के रस) को पीनेवालो मे सवसे अधिक सोमपान करनेवाला है। सोमयज्ञ में सबसे अधिक सोम इन्द्र को ही अर्पित होता है। सोमपान करके इन्द्र का उदर समुद्र के समान फैल जाता है। इन्द्र के मुख में सभी प्रकार के जल विलीन हो जाते हैं।[३] सोमपान करके इन्द्र शक्तिशाली होकर विश्व के सभी कर्म करता हुआ चलता है।[४] इन्द्र कामनाओ को बरसानेवाला वृषभ है तथा समस्त जगत् का पति अर्थात् स्वामी है।[५] इन्द्र वसुओ अर्थात् धनो का रक्षक वसुपति है। जो इन्द्र की वन्दना करते हैं अथवा उसे हवि अर्पण करते हैं उनकी इन्द्र घम-घूम कर रक्षा करता है अर्थात् जहाँ-कही उन पर विपत्ति आती है, उनकी रक्षा के लिए वही जा पहुँचता है।[६]

इन्द्र गायो के हेतु व्रज अर्थात् विचरण या चरागाह भूमि को समुन्नत करता है। पर्वत अर्थात् मेघ को चलायमान करनेवाला अथवा मेघ पर चलने वाला, इन्द्र, राधस् अर्थात् अन्न, दुग्ध इत्यादि के रूप में धनराशि को उत्पन्न करता है।[७]

आकाश तथा पृथ्वी मिलकर भी शत्रुओ को मारनेवाले इन्द्र से वडे नही है। इन्द्र ही स्वर्गीय जल को हमारे लिए पृथ्वी पर भेजता है तथा गायो में दुग्ध उत्पन्न करता है।[८] इन्द्र शत्रु को कुश के समान धराशायी करनेवाले कौशिक हैं। इन्द्र की गति मन्द है। इन्द्र नये-नये अन्नो की सृष्टि करते हैं। इन्द्र ने ही सहस्रो ऋषियो अर्थात् चमकीले ताराओ को बनाया।[९]

जव 'वल' नामक राक्षस ने गो अर्थात् प्रकाश अथवा भोजन के उत्पादक कृषि अथवा कृषिवर्द्धक जल को अपनी गुफा में रख छोडा, तव इन्द्र ने अपने पर्वताकार मेघो के साथ जाकर वल से युद्ध किया तथा 'गो' को 'वल' की गुफा से छुडा लाया और देवताओ को 'वल' के भय से मुक्त किया।[१०]

इन्द्र तथा वायु की गति मन के समान तीव्र है। विप्र अपनी रक्षा के हेतु उन्हें हवि अर्पण करते है। इन्द्र-वायु को सहस्रो आँखे हैं। वे अत्यन्त ही धीमान् है।[११] इन्द्र शिप्री अर्थात् वडी-वडी दाढोवाले हैं। हनु का अर्थ भी शिप्र होने से शिप्री इन्द्र हनुमान् है। इन्द्र वाज अर्थात् अन्न अथवा युद्ध के

(१) १।८।२ (२) १।८।५ (३) १।८।७ (४) १।६।२ (५) १।६।४ (६) १।६।६ (७) १।१०।७ (८) १।१०।८ (९) १।१०।११ (१०) १।११।५ (११) १।२३।३

पति हैं। इन्द्र शची अर्थात् शक्ति के स्वामी है। इन्द्र के कार्य अमर हैं।[1] राधाओ अर्थात् धनो के पति 'राधाना पते' इन्द्र को नमस्कार है।[2]

देवशिल्पी त्वष्टा ने इन्द्र का वज्र बनाया, जिससे इन्द्र ने पर्वत अथवा मेघ में रहनेवाले जलनिरोधक अहि अर्थात् हिंसक सर्प का वध किया। ऐसा होने पर पर्वत तथा मेघ दुधारु गाय की भाँति जल की धारा छोडने लगे।[3] यह जल स्पन्दनशीला नदियो में गिर कर पुन समुद्र की ओर जाता है। मतवाले साँड की भाँति तीनो लोक में विचरण करते हुए इन्द्र ने सोमरस पान करके अपना वज्र उस प्रथम अहि पर फेंका जो सारे ससार को अन्धकार से आच्छन्न किये हुए था। यह जलनिरोधक अथवा जगत् का आच्छादक वृत्र हाथ-पाव कटे हुए पुरुष की भाति बहते हुए जल में पडा है। यह जलराशि उसी धराशायी वृत्र के शरीर पर से होकर बह रही है। इन्द्र का शत्रु वृत्र जल में सोया पडा है। इसकी निद्रा बहुत काल तक की होती है। इन्द्र दासो का स्वामी है। इन्द्र अहिगोपा है अर्थात् हिंसाकारियो से, सर्प से, अथवा जलनिरोधक वृत्र से, हमारी रक्षा करने वाला है। इन्द्र ने वृत्र का वध करके जल को अनिरुद्ध किया तथा पणियो का वध करके "गायो" को उनसे छुडाया।[4]

वृत्र अहि तथा इन्द्र ने परस्पर विद्युत् एव अन्य चित्र-विचित्र आयुधो से युद्ध किया तथा गरज-गरज कर एक दूसरे के सम्मुख आये। वृत्र का वध करके इन्द्र पुन निन्यानवे अर्थात् अनेक नदियो के पार सुदूर अन्तरिक्ष के परे चले गये। उन्होने ऐसा वृत्र के भय से नही किया। बाज पक्षी जिस प्रकार आकाश मे निर्भीक विचरण करता है उसी प्रकार इन्द्र भी आकाशचारी हैं।[5]

वृत्र के चिग्घाडनेवाले सोने के रग के, मणियो से सुशोभित, जो अनुचर आकाश में आये, उन्हें युद्ध मे मारकर इन्द्र ने जला डाला।[6]

इन्द्र यज्ञ में बलि के निमित्त मेष अर्थात् भेडे के रूप में आता है। स्तुति मे इन्द्र की शक्ति बढती है। इन्द्र वसुओ अर्थात् धनो का अर्णव अर्थात् आगर है। इन्द्र के हाथ प्रकाश की किरणो के समान मनुष्य के हितार्थ सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। वसु अर्थात् धनवान्, दानुमद् अर्थात् दानशील, इन्द्र, पर्वत अर्थात् मेघो को धारण करता है। अपनी शक्ति से ही वह समस्त विश्व को आच्छादन करनेवाले सर्प का नाश करता है। विश्व को अन्धकार में रखने वाले उस आच्छादक सर्प का नाश करके इन्द्र आकाश में सूर्य को उगाता है।[7]

---

(१) १।२६।२ (२) १।३०।५ (३) प्राचीन जर्मन देवता थुनार अथवा थौर भी मेघरूपी गौओं का दोहन करनेवाले गोपालक थे—Max Müller—Contributions, P. 745
(४) १।३२।१-११ (५) १।३२।१३-१४ (६) १।३३।७ (७) १।५१।१, ४

राजर्षिकुत्स के हित के लिये इन्द्र ने शुष्म नामक राक्षस को मारा। अतिथिग्व दिवोदास के लिये इन्द्र ने शम्बर नामक राक्षस को मारा। सदा से ही इन्द्र ने राक्षसो को मारा है।[1]

जब उशना काव्य अर्थात् भृगु अथवा शुक्र तारा ने अपनी शक्ति इन्द्र के वि द्ध लगाकर अनावृष्टि से अकाल लाना चाहा तो इन्द्र ने अपनी गति वक्रगति उशना काव्य से भी वक्र करके अपनी उग्रगति से आर्यों के निवासस्थान से अनावृष्टि-कारक "शुष्ण" राक्षस का भय दूर किया तथा अनेक जल के स्रोत बहाये।[2]

महान शक्तिशाली मरुद्गण वृत्र के वध के समय अपनी अपनी वृष्टि के साथ इन्द्र की ओर से युद्ध करने लगे। जब क्रोध से अन्धे होकर इन्द्र वल की परिधि अर्थात् दुर्ग की दीवार को तोडने लगे तव भी म द्गण ने इन्द्र का साथ दिया था। वल के दुर्ग को तोडकर इन्द्र ने देवताओ की गौओ (अर्थात् आर्यों की गौओ अथवा सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराओ के प्रकाश) का उद्धार किया।[3]

इन्द्र सदा शत्रुओ से युद्ध करने वाले हैं। वह अपने सहायको से मिलकर दस्युओ के पुरो को नष्ट कर देते हैं। उन्होने ही नमुचि नामक मायावी राक्षस को मारा था।[4]

देवगोप अर्थात् देवताओ से रक्षित आर्यगण यज्ञ की समाप्ति होने पर इन्द्र की जो प्रार्थना करते है उसी से इन्द्र की शक्ति वढती है तथा इन्द्र की अमरता भी वची रहती है।[5]

प्रशसा के योग्य इन्द्र दीप्तिमान "दिव" है, उनके दान अपार हैं, वे निर्भय हैं, वे शत्रुओ का नाश करने में समर्थ है, उनके रथ के अश्व अर्थात् उनकी किरणें हरि अर्थात् चमकने वाली, हरिद्वर्ण, अथवा उदक् को हरनेवाली है। इन्द्र का यश महान है। इन्द्र महान वलशाली "असुर" हैं।[6]

इन्द्र अपने भीषण वल से सर्वाच्छादक अन्वकार को नष्ट करते है।[7] समग्र ससार के माता-पिता इन्द्र विश्वव्यापी होने के कारण विष्णु हैं। सभी प्रकार के भोगो का सार इन्द्र को जाता है। पर्वतो को उठाने वाले इन्द्र ने वराह अर्थात् आच्छादक मेघ अथवा कृपि नष्ट करने वाले हिंसक "वराह" को अपने प्रहार से नष्ट किया।[8] इन्द्र ही कृष्णमयी रात्रि को उषा से अलग करते हैं। सूर्य रूपी इन्द्र नित्य ही उत्पन्न होते है तथा सर्वदा युवा रहते हैं। कृष्णा अर्थात् काली तथा रोहिणी अर्थात् लाल गायो को इन्द्र ही उज्ज्वल दुग्ध से युक्त करते हैं।[9]

---

(१) १।५१।६ (२) १।५१।११ (३) १।५२।५ (४) १।५३।७ (५) १।५३।११
(६) १।५४।३ (७) १।५६।४ ८) १।६१।७ (९) १।६१।८,९

पुरुकुत्स के लिये युद्ध करते हुए इन्द्र ने दस्युओ के सात पुरो को नष्ट किया तथा सुदास के लिये युद्ध करते हुए इन्द्र ने अह नामक दस्युराज का सारा धन अपहरण कर लिया।[१] एक समय पर्वतारोही अर्थात् पर्वताकार मेघ पर आरूढ होकर भ्रमण करनेवाले इन्द्र ने मृग-रूपधारी मायावी राक्षस मायामृग का वध किया था।[२]

वृत्र ने व्यर्थ ही अपने विद्युत् से इन्द्र के वज्र का प्रतिकार करना चाहा।[३]

इन्द्र के क्रतु अर्थात् यज्ञ अथवा कर्म महान हैं। इन्द्र अन्न के उत्पादक हैं। इन्द्र का रूप उग्र है। इन्द्र भीम अर्थात् अतिशय बलशाली हैं। इन्द्र का यश महान है। इन्द्र देदीप्यमान हैं। इन्द्र के बाहु सर्वत्र वर्तमान हैं। इन्द्र शिप्री अर्थात् हनुमान अथवा बडी दाढोवाले हैं। उनके अश्व हरि हैं।[४] इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थि से वज्र बनाकर वृत्र निन्यानवे अर्थात् अनेक अनुचरो को मारा।[५] वृष्णियो अर्थात् यदुवशियो की कामनाओ को बरसानेवाले देवता इन्द्र आकाश तथा पृथ्वी दोनो के राजा तथा हवि को ग्रहण करने वाले हैं। अपने सखा मरुद्गणो की सहायता से वह अपने भक्तो की रक्षा करते हैं। सूर्य का पथ इन्द्र द्वारा ही निर्धारित है। अपने अग्नि सरीखे बल से इन्द्र समय-समय पर अपने सखा मरुद्गणो की सहायता से वृत्रो का वध करते हैं तथा पृथ्वी पर सुखो की वर्षा करते हैं।[६] वज्र चलाने वाले, दस्युओ का वध करने वाले, भीम, उग्ररूप इन्द्र, सहस्रो रूप में दर्शन देते हैं तथा मरुतो की सहायता से आर्यों की पाच जातियो की रक्षा करते हैं।[७] इन्द्र ने ही ज्राश्व की सेना के रोहित् तथा श्वेत वर्ण अश्व बनाये। अम्बरीष तथा अन्य राजर्षियो तथा देवो की प्रार्थना से प्रसन्न होकर इन्द्र ने भक्तो को राधस् देकर उन्हें सुराधा अर्थात् धनवान् बनाया।[८] इन्द्र सूर्य के शासक तथा सभी प्रकार के जल के भी शासक हैं। गर्भस्थित शिशुओ की इन्द्र ही रक्षा करते हैं।[९] उषाकाल मे जब उशना अर्थात् प्रात कालीन शुक्र तारा आकाश में उगा उस समय इन्द्र ने ही सूर्य के चक्र को उषा पर फेंका।[१०]

इन्द्र ने राक्षसो को मित्र तथा अर्यमन् के साथ मिलकर मारा।[११] अन्तरिक्ष रूपी समुद्र में रहनेवाला तथा जल (के समान सोम) को पीनेवाला इन्द्र महा-मत्स्य है।[१२]

पाँचो लोक इन्द्र के हाथ की पाँच उगलियाँ हैं।[१३] इन्द्र अन्य देवताओ के तथा विशेषतर मित्र अर्यमन् तथा मरुतो के शासक हैं।[१४]

---

(१) १।६३।७ (२) १।८०।७ (३) १।८०।१३ (४) १।८१।४ (५) १।८४।१२ (६) १।१००।१–२ (७) १।१००।१२ (८) १।१००।१६–१७ (९) १।१०४।६ (१०) १।१३०।९ (११) १।१७४।६ (१२) १।१७५।१ १।१७६।१ (१३) १।१७६।३ (१४) २।१।४

जब पृथ्वी व्यथा से कांप रही थी तथा कुपित पर्वत अथवा मेघ पृथ्वी पर विनाश की वृष्टि कर रहे थे तब अन्तरिक्ष में आकर इन्द्र ने ही उन्हें शान्त किया ।[१]

जब शम्बर दस्यु पर्वतो में छिप गया तब इन्द्र ने चालीस वर्ष तक उसका पीछा किया फिर उसे ढूंढ निकाल कर मार डाला ।[२]

सात प्रकार के प्रकाश को फैलानेवाले इन्द्र ने ही सात प्रसिद्ध नदियो की सृष्टि की । इन्होने हाथ मे वज्र लेकर आकाश में ऊपर उठनेवाले दस्यु को मार डाला ।[३]

मनुष्यो के हित के लिये नार्मर दस्यु को मार कर इन्द्र ने उसका वसु अर्थात् धन अपहरण कर लिया ।[४] एक ही इन्द्र सौ वा दश रूपो में दस्युओ को भयभीत करने के लिये आता है ।[५] यज्ञ करनेवालो के हित के लिये इन्द्र ने भयावह दृभीक नामक दस्यु की हत्या की । नौ तथा नब्बे बाहुओ वाले अर्थात् सर्वव्यापी इन्द्र ने उरण नामक दस्यु को मारा तथा अर्बुद नामक दस्यु का शिर नीचा करके उसकी हत्या की । इसी प्रकार इन्द्र ने स्वश्न, शुष्ण पिप्रु नमुचि तथा रुधिक्र नामक दस्युओ की हत्या करके शम्बर दस्यु के सैकडो पुरो को नष्ट किया ।[६]

इन्द्र गोपति है अर्थात् पृथ्वी रूपिणी गो के स्वामी हैं । मेघो को फाडकर इन्द्र ने पृथ्वी पर जल को बरसाया जिससे अन्न उत्पन्न हुआ ।[७]

इन्द्र कृष्ण के अनुगामी है तथा पृथ्वी को प्रकाश से परिपूर्ण करते है अर्थात् कृष्णवर्णा रात्रि के अनन्तर सूर्य रूपी इन्द्र उदित होकर पृथ्वी को प्रकाशित करते है अथवा कृष्ण वर्ण मेघो का पीछा करनेवाले इन्द्र उनका नाश करके उनका सारा जल पृथ्वी पर गिरा कर पृथ्वी को पुन प्रकाशमान करते हैं अथवा कृष्णवर्ण दस्युओ का पीछा कर उनका नाश करके पृथ्वी को उनके प्रभुत्व से मुक्त करते हैं ।[८]

स्वरोचिष् अर्थात् स्वय अपने तेज से दीप्तिमान इन्द्र अथवा परमैश्वर्यशाली सूर्य, वृष्ण अर्थात् कामनाओं का अथवा जल का बरसानेवाला है । वह जगत् का अस्यक अर्थात् प्रेरक असुर है । वह तीनो भुवनो का भूषण है । वह अनेक नामो वाला विश्वरूप विष्णु अमृत में अर्थात् अनश्वर जलराशि मे निवास करता है ।[९] आकाश से भी पूर्व जन्म लेनेवाले सूर्य-रूपी इन्द्र के वस्त्र अर्थात् किरण अर्जुन अर्थात् उज्ज्वल हैं ।[१०]

---

(१) २।१२।२ (२) २।१२।११ (३) २।१२।१२ (४) २।१३।८ (५) २।१३।६ (६) २।१४।३-६ (७) ३।३०।२ (८) ३।३१।१७ (६) ३।३८।४ (१०) ३।३६।२

इन्द्र की जो स्तुति करते हैं उन्हे इन्द्र राधाओ से अर्थात् धनो से युक्त करते है ।[1] धनजय अर्थात् धनराशि को जीतने वाले इन्द्र सग्राम मे अजेय है ।[2]

इन्द्र आकाश को अपनी "हरि" अर्थात् चमकनेवाली किरणो से धारण करते है तथा पृथ्वी को हरित वर्ण उद्भिद राशियो से परिपूर्ण करते है । इन्द्र द्वारा वृष्टि से हरित अर्थात् पीत वर्ण अन्न उत्पन्न होता है जिसमे स्वय हरि अर्थात् क्षुधा हरने वाले तथा बलदायक इन्द्र वर्तमान है ।[3] इन्द्र ने अपना सारा बल अपने हर्यन्त अर्थात् पीतवर्ण तथा अर्जुन अर्थात् देदीप्यमान वज्र मे लगा दिया तथा अपने हरि अर्थात् हरने वाली किरणों से सोमरस का पान करके अर्थात् यज्ञ में अर्पित सोमरस को किरणो से सोखकर, हरि अर्थात् जल का अपहरण करके रखने वाले मेघो से, गो अर्थात् वृष्टि पर निर्भर कृषि, को बचा लिया ।[4]

सोमरस प्राप्त करने के हेतु इन्द्र ने अपने पिता त्वष्टा का पाव पकड कर उन्हें मार डाला ।[5]

राधाओ के पति अर्थात् धन-धान्य के स्वामी इन्द्र को बल से निचोडा हुआ सोमरस तथा मन्त्रो द्वारा स्तुति यह दोनो ही प्रिय हैं ।[6]

एक ही महान इन्द्र अपनी माया से कार्य-सिद्धि के हेतु अनेको रूप धारण करते है ।[7]

इन्द्र ने मगधवासी कीकट जाति के दस्युओ की गायो को छीन कर उन्हें आर्यों को दे दिया ।[8]

अपने सात प्रकार के प्रकाश से इन्द्र तीनो लोक के अन्धकार को दूर करते है ।[9]

इन्द्र की सभी प्रशसा करते है । इन्द्र ने मेघो को चीरकर देवशुनी सरमा के बताये हुए पथ से जाकर गौओ का उद्धार किया अर्थात् जल अथवा प्रकाश को छुडाया । अगिरसो की प्रार्थना से प्रसन्न होकर इन्द्र ने अन्न की सृष्टि की ।[10] इन्द्र ने शुष्ण (अनावृष्टि ?) तथा कुयव (यव के दानो मे बुराई लाने वाले?) नामक हिंसक प्रभावो की हत्या की । जब सूर्य कुपित होकर ससार को जलाने लगे थे तब इन्द्र ने सूर्य के रथ के पहिये को तोड डाला ।[11]

इन्द्र ने ऋजुश्व आदि आर्य नेताओ के हित के लिये पचास हजार कृष्णो अर्थात् कृष्ण वर्ण अनार्यों को मार कर उनके पुरो को नष्ट कर दिया ।[12]

सूर्य के चक्र को भग करने वाले अर्थात् सूर्य के प्रकाश को मेघो से ढकने

---

(१) ३।४१।६ (२) ३।४२।६ (३) ३।४४।३ (४) ३।४४।५ (५) ३।४८।४ [द्रष्टव्य Max Muller Contributions p 560] (६) ३।५१।१० (७) ३।५३।८ (८) ३।५३।१४ (९) ४।१६।३,४ (१०) ४४।१६।८ (११) ४।१६।१२ (१२) ४।१६।१३

वाले कृष्ण अर्थात् कृष्ण वर्ण मेघो के अधिदेवता इन्द्र, अन्तरिक्ष के जल मे ही निवास करते है तथा पृथ्वी पर जल की वृष्टि करते है ।[१]

इन्द्र की माता अदिति ने इन्द्र को सहस्रो वर्ष पर्यन्त अपने गर्भ मे रखा । इन्द्र की माता अदिति ने शिशु अवस्था[२] में इन्द्र को त्याग दिया अथवा अन्तरिक्ष में फेक दिया । बालक इन्द्र को कुषव नामक राक्षस निगल जाने आया पर उस अवस्था में ही इन्द्र ने उसे मार डाला तथा जलो को मुक्त कर दिया अर्थात् बालरवि ने ही आँधी-तूफान पर विजय पाकर उनके जल को बरसा कर उन्हे परास्त कर दिया । जब इन्द्र व्यंस नामक दस्यु से युद्ध कर रहे थे तब व्यंस ने इन्द्र के हनु अर्थात् चिबुक अथवा दाढ़ी पर प्रहार किया । इन्द्र ने तब अपने वज्र से उस दस्यु का शिर चूर्ण कर दिया । इन्द्र अदिति रूपी गो का वत्स है तथा मतवाले साढ की भाति निर्भय होकर देवताओ के शत्रुओ का नाश करता फिरता है । इन्द्र की माता ने उसे महिष अर्थात् महान् अथवा भैसे के समान शक्तिशाली कहा । इन्द्र के ही कहने पर इन्द्र के सखा विश्वव्यापी विष्णु ने जल-निरोधक अनावृष्टिकारी अथवा आर्यों को घेरने वाले वृत्र के नाश के लिये अपने प्रसिद्ध विक्रम दिखाये । इन्द्र उत्पन्न होकर अपने पिता त्वष्टा को उनका पाव पकड कर मार बैठे तथा अपनी माता अदिति को मार कर स्वय विधवा बना डाला ।[३] (प्राचीन देव त्वष्टा अर्थात् द्यौस् को हटाकर इन्द्र स्वय देवाधिदेव बन बैठे)

मरुतो के साथ इन्द्र हमारी रक्षा करने को अन्तरिक्ष से आते हैं ।[४] इन्द्र वृष अर्थात् जल बरसाने वाले है । शत्रुओ पर वह अपना चतुष्कोण वज्र फेंकते है । इन्द्र नरो के नेता नृतम है । वह शची अर्थात् कर्म के स्वामी होने के कारण शचीवान् भी हैं । उन्होने मनुष्यो के हित के लिये अनेक देशो से होकर बहने वाली नदियाँ बनाई ।[५]

सारा ससार अपने पर्वत, समुद्र, आकाश तथा पृथ्वी सहित इन्द्र की उत्पत्ति के समय कापने लगता है । महान बलशाली इन्द्र, पिता आकाश तथा माता पृथ्वी दोनो को ही अपने ओज से परिपूर्ण कर देता है । इन्द्र की तूफान से दिशाएँ गूंज उठती हैं ।[६] वृत्र को मारनेवाले इन्द्र से बडा कोई नही है । सभी लोक इन्द्र के ही चतुर्दिक भ्रमण करते हैं । मनुष्यो मे इन्द्र का बडा ही यश है । देवताओं ने इन्द्र की सहायता से ही दिन तथा रातके राक्षसो पर

---

(१) ४।१६।१४ (२) ४।१८।८ (३) ४।१८।८, १२ (४) ४।२१।३ (५) ४।२२।२ (६) ४।२२।४

विजय प्राप्त की। कुत्स ऋषि के लिये युद्ध करते समय इन्द्र ने सूर्य का चक्र उसके स्थान से हटा लिया था। इन्द्र ने अकेले ही सभी राक्षसो से युद्ध किया। मनुष्यो के हित के लिये इन्द्र ने सूर्य को भी आहत किया। वृत्र के वध के समय इन्द्र का क्रोध अत्यन्त ही भयावह था। अपवित्रता के निवारण हेतु इन्द्र ने आकाश की पुत्री कुमारी उषा पर भी प्रहार किया। इन्द्र ने उषा के रथ के पहिये चूर-चूर कर डाले तथा उषा भयभीत होकर अपने स्थान को भाग गई। उषा के रथ के पहियो का चूर्ण ही नदी पर कुहासे के रूप में पडा है। इन्द्र की माया से ही सभी नदियाँ बनी है।[1]

इन्द्र के घोडे बभ्रू अर्थात् भूरे रग के है।[2] इन्द्र सीता को ग्रहण करे अर्थात् जुते हुए खेत पर जल बरसायें। पूषा नामक देवता से प्रेरित होकर हल से बनाई हुई दरारे अथवा सीता ही प्रतिवर्ष अन्न का दान करती है।[3]

इन्द्र विभीषण अर्थात् राक्षसो को भयभीत करने वाला है। वह दासो का शासक है।[4] इन्द्र शत्रुओ के दुर्ग की राह बता देता है तथा उनके धन का अपहरण कर लेता है।[5] इन्द्र के शूर सैनिक चारो दिशाए, तीनो भुवनो तथा पाँचो लोको को परिपूर्ण किये रहते है।[6] इन्द्र के शूर सैनिक हनु अर्थात् शत्रुओ का हनन करने वाले तथा शिप्री अर्थात् बडी-बडी दाढो वाले, वेगवान् मरुद्गण है।[7] इन्द्र ने वल के दुर्ग की दीवारो को तोडकर गौओ का अर्थात् जल अथवा प्रकाश का उद्धार किया।[8]

देव शिल्पी त्वष्टा ने इन्द्र के लिये महान् आयुध वज्र बनाया जिसमे सहस्रो धार तथा शतसख्यक नोकें है।[9]

इन्द्र की सहायता से कुत्स ने गो चुराने वाले पणियो की बहुत बडी सेना को हराया। इन्द्र ने कुत्स के हित के लिये ही अनावृष्टिकारी शुष्ण राक्षस को मार कर अन्न की रचना की। इस युद्ध मे कुत्स इन्द्र के सारथी थे। कुत्स के हित के लिये ही इन्द्र ने अपने को फैलाकर जल की रचना की। इन्द्र बाज पक्षी की भाति यज्ञ में अर्पित किया हुआ सोमरस का अपना अश लेकर आकाश में चला जाता है। सोमपान से शक्तिशाली होकर इन्द्र ने नमुचि राक्षस को मारा तथा उसका शिर चूर-चूर कर दिया जो अब समुद्र के ऊपर फेन बनकर तैरता फिरता है। इन्द्र ने सर्प के पुत्र नमि की रक्षा के लिये ही नमुचि को मारा था। इन्द्र ने सर्प के समान मायावी पिप्र नामक दस्यु के सारे दुर्गों को नष्ट

(१) ४।३०।१-१२ (२) ४।३२।२३, २४ (३) ४।५७।७ (४) ५।३४।६ (५) ५।३४।७ (६) ५।३५।२ (७) ५।३६।२ (८) ६।१७।६ (९) ६।१७।१०

कर दिया । इन्द्र सुदामन् अर्थात् सुन्दर दानवाला सुदामा है । राजा ऋजिश्व की पूजा से प्रसन्न होकर उसने उनका खोया हुआ वैभव पुन प्राप्त कराया ।[१]

कामनाओ को बरसाने वाला इन्द्र आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी को परिपूर्ण करके ब्रह्म अर्थात् वैदिक धर्म के द्वेषियो को जलाता फिरता है । इन्द्र पृथ्वी तथा समुद्र (Space) दोनो को प्रकाशित करता है ।[२]

अनेक ऋतुओ अर्थात् यज्ञो वा कर्मों के करने वाले इन्द्र की गुणरूपिणी शचियाँ अर्थात् विशेषताए सभी लोगो में अनेक दिशाओ मे चरनेवाली गौओ की भाति फैली है । इन्द्र सुदामा अर्थात् सुन्दर दामन् अथवा रज्जु वाला है । इन्द्र के इस सुन्दर रज्जु के अनेक धागे है जिनमे निखिल विश्व बधा है । इन्द्र सुदामा अर्थात् औरो को अपने सुन्दर रज्जु मे बाँधनेवाला होकर भी स्वय अदामा अर्थात् किसी से न बँधने वाला है ।[३]

जब वृषभ नामक आर्य राजा अथवा जल बरसाने वाला मेघ दस्युओ से अर्थात् आर्यों के शत्रुओ से अथवा जल-निरोधक आकाशिक शक्तियो से युद्ध कर रहा था, तब इन्द्र ने उसे अपना रथ दिया था । यह युद्ध दस दिनो तक होता रहा ।[४]

गाये भग देवता की सम्पत्ति हैं । इन्द्र गोपति अर्थात् उन गायो का रक्षक है । गायें ही सोमयज्ञ मे प्रथम भक्ष अर्थात् सर्वप्रथम बलि प्रदान करने योग्य है ।[५]

प्रत्येक युग मे इन्द्र अपने भक्तो की पूजा से प्रसन्न होकर पृथ्वी पर आते है ।[६] इन्द्र के कान उनको अर्पित की हुई मुनि-स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनते हैं ।[७]

इन्द्र सब कुछ करने में समर्थ दक्ष हैं । भक्तो का सहायक मित्र देवता भी वही है । सोमपान करके सब को हिला देनेवाले मरुतो के साथ भयकर इन्द्र अपने पुजारियो की सहायता के लिये आता है ।[८]

इन्द्र ने उषा के साथ उषापति सूर्य को बनाया तथा सूर्य को प्रकाश से भरा। इन्द्र ने तीनो भुवनो को सोम से भर दिया फिर स्वय अन्तरिक्ष मे अदृश्य होकर सोमपान करने अमरत्व को प्राप्त किया । इन्द्र ने आकाश तथा पृथ्वी को अपने अपने स्थान मे बांधा तथा सात रग के प्रकाशरूपी अश्वो को सूर्य का रथ खीचने की आज्ञा दी । इन्द्र ने गौओ में दुग्ध की स्थापना की । दश इन्द्रियो से इन्द्र ही सोमपान करते हैं ।[९]

---

(१) ६।२०।४–७ (२) ६।२२।८, ९ (३) ६।२३।४
(४) ६।२६।४ (५) ६।२८।५ (६) ६।३६।५ (७) ६।३८।२ (८) ६।४४।७ (९) ६।४४।२३, २४

इन्द्र ने कुत्स के चरागाहो को दस्युओ से मुक्त किया ।[१] उषा इन्द्र की तेजराशि है । पाव न होने पर भी उषा पूरब से आती है तथा पाव वालो को अपने अपने कार्य में सलग्न करती है । इसी प्रकार विना पाव की वाणी भी आज्ञा के रूप में पाव वालो को कार्यों में विनियुक्त करती है । तीस पग अर्थात् घटिकाओ में उषा दिवस को पार कर जाती है।[२] (एक घटिका २४ मिनटो के समान होती है) ।

गौओ को ढूंढने वाले साठ हजार वीर इन्द्र द्वारा मारे गये अर्थात् गौओ का अपहरण करने वाले साठ हजार दस्यु इन्द्र द्वारा निहत हुए ।[३]

इन्द्र ने नहुष की सेना के लिये अश्व दिये ।[४] सूर्य की किरणो से इन्द्र ससार के दु ख-क्लेश को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे अग्नि से वन नष्ट हो जाता है ।[५]

देवमाता अदिति इन्द्र की स्तुति करती है ।[६] जव से इन्द्र के सखा विष्णु अर्थात् इन्द्र के समवर्ती वा सहचर विष्णु ने तीनो लोको को तीन पग में पार कर लिया तव से ही जल को मोखने वा हरने वाली सूर्य की हरित किरणें निखिल जगत् की गति को नियमित कर रही हैं ।[७]

सर्वदा युवा, लम्वी गरदन वाला साढ अथवा शिर न दिखाई देने के कारण लम्वी गरदन वाला वृष्टिदाता इन्द्र कहाँ रहता है ? यह तो ब्रह्मा को छोडकर और कौन जानता है अथवा क देव ब्रह्मा ही यह जानते हैं ।[८]

इन्द्र वराह को नष्ट करके ससार को जल से परिपूर्ण करते हैं । जल मे ही दुग्ध तथा मधु की उत्पत्ति है ।[९] अपाला पृथ्वी इन्द्र के समागम से ही वनस्पति से परिपूर्ण होती है ।[१०]

सूर्य के रूप में इन्द्र अपनी किरणो से पृथ्वी का जल पी जाते हैं फिर उसी को वृष्टि के रूप मे पृथ्वी पर लाते हैं । इन्द्र विशाल हैं, सदा चलायमान हैं, सर्वत्र वर्तमान हैं । जल से पृथ्वी को पालने वाले इन्द्र जगत् की माता हैं । इन्द्र का आधार और कोई नही है । इन्द्र यज्ञ में हवि को भक्षण करने वाले हैं ।[११]

इन्द्र का परशु अर्थात् तडित् सूर्य की भाति चमकता है ।[१२] वृषाकपि सूर्य इन्द्र का सेवक है । वह कल्याण का वरमाने वाला वृष है तथा अपनी किरणो

(१) ६।४५।२४ (२) ६।५६।६ (३) ७।१८।१४ (४) ८।६।२४ (५) ८।१२।९ (६) ८।१२।१४ (७) ८।१२।२७ २८ (८) ८।६४।७ (९) ८।७७।१० (१०) ८।९७ (११) १०।२७।१३,१४ (१२) १०।४३।९

से जगत् को कम्पित अर्थात् चलायमान करने वाला कपि है । अस्त होकर वह पुन जगत् के कल्याण के हेतु उदय होता है ।[१]

इन्द्र के अश्व अर्थात् सूर्य के किरणसमूह हिंसको के बल को हरने वाले है । इन्द्र का रग "हरि" अर्थात् पीला है । इन्द्र का वज्र भी हरित् वर्ण ही है। इन्द्र स्वय उदक् वा क्लेश को हरने वाला है । इन्द्र से ही हरित् वर्ण यवादि अन्न होते है । इन्द्र महाबलशाली असुर है तथा गो अर्थात् पृथ्वी के रस अर्थात् जल को हरण करने के लिये उसने सूर्य को बनाया ।[२]

जब प्रातःकालीन सूर्य के रूप में इन्द्र उषा को नष्ट कर देता है तब यह सब तारे कहा चले जाते है, यह कौन जानता है ?[३]

इन्द्र गणो के गणपति है । इन्द्र के बिना कुछ भी नहीं होता ।[४]

ऋग्वेदान्तर्गत इन ऐन्द्र मन्त्रो में से कुछ के अनुवाद से यह स्पष्ट ही हो गया होगा कि इन्द्र अदृश्य स्वर्गलोक में रहने वाले देवता न होकर आरम्भ म पृथ्वी की भौतिक घटनाओ से घना सम्बन्ध रखनेवाले झझावात तथा वृष्टि देवता थे । तडित् इनका आयुध तथा वेगमान एव बलशाली मरुद्गण इनके सहायक तथा सहचर थे । हवि अथवा पृथ्वीरूपिणी गो के रस-रूपी जल को हरण करने वाली सूर्यशक्ति के देवता भी इन्द्र ही थे । देवताओ का राजा होने के कारण उन्हें सूर्य का परिचालक माना गया । बडी बडी दाढो अर्थात् "हनु" वाले हनुमान भी मरुत्वान् इन्द्र ही थे तथा इन्द्र ने सीता अर्थात् जुते हुए खेत को वृष्टि से सीचकर ग्रहण किया । इन्द्र का प्रधान कार्य दस्युओ वा राक्षसो की हत्या करना था । इन्द्र पुरो को नष्ट करने वाले पुरन्दर भी थे । इन्द्र के साथ चरित्रहीनता की कुछ कथाए लग गई । उनमें सर्वप्रसिद्ध कथा इन्द्र द्वारा अहिल्या के सतीत्व का अपहरण है। परन्तु वे बर महाशय ने अहिल्या को उषा तथा इन्द्र को मेघ-खड माना है तथा हौपकिंस महाशय ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अहिल्या बिना जोति हुई भूमि है (हल से जिसका सम्पर्क न रहा हो) ।[५]

भारतीय खुदाई विभाग के भूतपूर्व प्रधानसचालक श्री ह्वीलर ने इन्द्र को वर्बर आर्यों का नृशस देवता माना है जिनमें सभ्य अनार्यों के नगरो को तथा नदियो पर बनाये गये बाधो को तोड़-फोड कर जल को अनिरुद्ध कर अनार्य आबादियो को प्लावित कर डाला । पाश्चात्य लेखक स्टुअर्ट पिगट ने अपनी

(१) १०।८६।२१ (यास्क के अनुसार) (२) १०।९६।१-११ (३) १।११।७ (४) १।१९।२।६
(५) Religion and Philosophy of the Veda—Keith p 132

पुस्तक "प्रागैतिहासिक भारत" (Prehistoric India) में आर्यों को शरावी तथा वडी वडी तोद वाला वताया है क्योकि ऋग्वेद मे आर्यों के प्रधान देवता इन्द्र का "उदर- सोमपान के कारण वढा" हुआ था । पर शत्रुओ को नष्ट करने के लिये देवता की सहायता केवल भारत के आर्य ही नहीं मागते थे ससार की सभी युद्ध करने वाली जातियो ने ऐसा किया है । फिर ऋग्वेद में इन्द्र का सवसे महान कार्य वृत्र का वध है जो स्पष्टत जलनिरोधक आकाशिक काल्पनिक दस्यु अथवा मेघ है जिसके नष्ट करने से उसके द्वारा अवरुद्ध जल पृथ्वी पर आ जाता है । पुराणो में इन्द्र शत्रु वृत्र त्वष्टा आदित्य का तमोगुणी पुत्र हुआ । इन्द्र का दूसरा शत्रु विश्वरूप भी त्वष्टा का ही पुत्र था । इन्द्र के अनादर करने से जव देवगुरु वृहस्पति ने देवताओ का परित्याग किया तव देवताओ ने ब्रह्मा की आज्ञा से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को गुरू वनाया पर उनके असुरो से मिले रहने के कारण इन्द्र ने उनका वध किया । इसी वध के प्रतिकारार्थ त्वष्टा ने वृत्रासुर को उत्पन्न किया । वह जले हुए पहाड के समान काला और वड डीलडौल का था । उसके शरीर में से सध्याकालीन वादलो के समान दीप्ति निकलती रहती थी ।[१] ऋग्वेद से लेकर पुराणो तक जितने भी वर्णन इन्द्र अथवा इन्द्र के प्रधान शत्रुओ के है उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र के पराक्रम आकाशिक घटनाओ के ही वर्णन है । ऋग्वेद में ऐसा वर्णन अवश्य है कि सोमरस पीकर इन्द्र "मन्द" हो जाते है परन्तु मन्द शब्द का अर्थ शक्तिशाली भी हो सकता है । जहाँ तक इन्द्र के विशाल उदर का प्रश्न है यह समझना अवश्य भूल होगा कि युद्ध में पराक्रमी आर्य वडी तोदवाले मोटे भद्दे लोग थे । इन्द्र का उदर अन्तरिक्ष है, अत विशाल है । शत्रुओ की हत्या तो सभी जातियो के देवता या उनके भगवान की सहायता से सदा से ही होती आई है । ऐसे वर्णनो से इन्द्र को आर्य-नेताओ का ही दैवी रूप मान लेना ठीक न होगा । पर हाँ, अनेक पौराणिक कथाओ मे मनुष्य ने इन्द्र का पद प्राप्त करने की चेष्टा अवश्य की थी, जिससे यह जान पडता है कि इन्द्र का पराक्रम लौकिक नेताओ का भी आदर्श था ।

ऋक्सहिता ४।५७।५ में इन्द्र तथा वायु अथवा वायु एव आदित्य को क्रमश शुन तथा सीर कहा गया है । सायनाचार्य के अनुसार शौनक ने शु का अर्थ आनेवाला अर्थात् अन्तरिक्ष में वेगपूर्वक आनेवाला वताया है ।[२] प्राचीन मिस्र में "शु" नामक अन्तरिक्ष के महान देवता की पूजा होती थी जो आकाश को

---

(१) भागवत ६।९ (२) सायनभाष्य

पृथ्वी से अलग करनेवाले थे तथा जिन्होने जगज्जननी आकाशरूपिणी "नुट" देवी को ऊपर उठा रखा था। सृष्टि के आरम्भ में मिस्री हिरण्यगर्भ "रा" ने अगाध जलराशि "नु" से सर्वप्रथम वेगवान् "शु" को ही उत्पन्न किया।[१] भारत के इन्द्र अन्तरिक्ष के "वेगवान्" शु देवता ही थे। जैसा पहले बताया जा चुका है, वीरीत्रघ्न वाहागन, बहराम अथवा राम नाम से मध्येशिया में भी ऐन्द्र शक्ति की पूजा होती थी यद्यपि वैदिक आर्यों से होनेवाले झगडो के कारण ईरान में "इन्द्र" को हिंसक तथा कुख्यात "देवो" का नायक मानकर उनको घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा था।

—— o ——

(१) Egyption Myth and Legend P 44

छठवाँ अध्याय

अदिति की सन्तान

देवमाता अदिति की चर्चा पहले हो चुकी है । आकाश अन्तरिक्ष तया पृथ्वीरूपिणी अदिति के पुत्र आदित्य कहलाये । पौराणिक काल तक तो आदित्यो की सख्या वारह निश्चित हो चुकी थी तया वे वारह महीनो मे सूर्य के ही भिन्न-भिन्न रूप माने गये । पर ऋग्वेद में आदित्यो की सख्या अनिश्चित-सी रही तथा उनके नाम में भी अन्तर रहा ।

निरुक्तकार ने आदित्य का अर्थ केवल अदिति का पुत्र ही नही वताया है । आदित्य के अन्य अर्थ भी है "आदत्ते रसान्" अर्थात् जो जल को किरणो द्वारा सोख ले । "आदत्ते भाम ज्योतिपाम्" अर्थात् ताराओ की ज्योति जो उदय होकर छीन लेता है । "आदीप्तो भासेति" अर्थात् जो प्रकाश से दीप्तिमान् है ।[1] इस व्युत्पत्ति से आदित्य शव्द अदिति से न वनकर स्वय स्वतत्र शव्द वना तया इससे फिर अदिति शव्द की उत्पत्ति हुई ।

ऋग्वेद के एक स्थान पर आदित्यो की सख्या आठ वताई गई है ।[2] परन्तु अन्य स्यानो में छ, पाच, तीन, दो अयवा एक ही आदित्य की प्रार्थना की गई है । आठ, छ, पाच, तीन, दो अयवा एक आदित्य क्यो माने गये, इमके अनेक कारण वताये जा सकते है । चार दिशाओ तथा चार विदिशाओ को मिलाकर आठ होते हैं । हवन-कुण्ड के चार कोण तया चार भुजाओ के मध्य-विंदु भी मिलकर आठ होते है । छ ऋतु है । ठडे देशो में जहाँ से आर्य आये, आरभ में केवल दस महीनों तथा पाच ऋतुओं की गणना होती थी क्योकि उन देशो में दस महीनो में ही सूर्य, चन्द्रमा, तारा इत्यादि के दर्शन हो सकते थे । वेदो में भी वहुधा हेमत शिशिर को एक ऋतु मानकर पाच ही ऋतुओ

(१) निरुक्तम् २।४।१३ (२) १०।७२

की गणना हुई है। इन छ अथवा पाच ऋतुओ के छ तथा पाच आदित्य हुए। प्रात काल, मध्याह्न तथा सध्या के तीन आदित्य हुए। मिस्र की पौराणिक कथाओ में वहाँ के आदित्य "रा" के मुख से स्वय यह वाक्य कहलाया गया है कि "मै ही प्रात काल को "खेपेरा" मध्याह्न को "रा" तथा सध्या को "टुम" होता हूँ।"[१] पुन प्रात काल तथा सध्या के दो आदित्य एव सविता, सूर्य, मित्र, वरुण अथवा इन्द्र को एक परमशक्तिशाली देवता मानकर केवल एक आदित्य की वन्दना हुई।

ऋग्वेद में मित्र तथा वरुण के नाम अधिकाश स्थानो पर साथ-साथ ही आये है। मित्र पूतदक्ष अर्थात् पुण्य कार्य में कुशल हैं। वरुण पाप अथवा हिंसक शत्रुओ का नाश करनेवाले हैं। दोनो ही घृताची अर्थात् घृत अथवा जल के बनानेवाले है।[२] वे वही रहते है जहाँ ऋत अर्थात् धर्मपालन होता है।[३] इन्द्र तथा वरुण हमारे लिये अनेको प्रकार की राधाए अर्थात् धनधान्य देते है।[४] मित्र तथा वरुण ससार की रक्षा करते है तथा हमारे लिये अनेक सुन्दर राधाएँ उत्पन्न करते है।[५]

वरुण पक्षियो की पहुँच से परे है, वायु से भी परे है तथा जल से भी परे है। पूतदक्ष वरुण असीम अन्तरिक्ष में रहकर पृथ्वी के सारे स्थावर जगम जीवो पर शासन करते है। वरुण ने सूर्य को बनाया, फिर सूर्य का पथ बनाकर स्थावर सूर्य को चलायमान किया। वरुण की ही यह शतसख्यक गुणकारक ओषधियाँ है। वरुण लोकहितार्थ सहस्रो कार्य करते है। वरुण आपदाओ को रोक कर रखते है तथा अपने भक्तो के देश में उन्हे जाने नही देते।[६]

जो तारे रात को चमकते है वे दिन को वरुण की आज्ञा से अदृश्य हो जाते है। वरुण की आज्ञा से चन्द्रमा रात्रि के आकाश को प्रकाशित करता है।[७]

वरुण तथा अन्य देवराज शत्रुओ के दुर्गों को नष्ट कर देते है।[८]

मित्र तथा वरुण का चक्षु सूर्य है।[९] ज्योतिष्मती अदिति नित्य ही प्रकाश विखेरने वाले मित्र तथा वरुण को उत्पन्न करती है जो ससार की गति को नियमबद्ध करते हैं। दोनो के बीच अदिति के तृतीय पुत्र अर्यमा, मित्र तथा वरुण के आदेशानुसार सभी जीवो को अपने-अपने कर्त्तव्य में सलग्न करते है।[१०] मित्र तथा वरुण द्यौस एव पृथ्वी के सयोग से उदय तथा अस्तकालीन सूर्य के

(१) Egyption Myth and Legend. P (२) ऋ० स० १।२।७ (३) १।२।८ (४) १।१७।७ (५) १।२३।६ (६) १।२४।६—६ (७) १।२४।१० (८) १।४१।३ (६) १।११५।१

रूप में उत्पन्न हुए ।[१] मित्र तथा वरुण असुर अर्थात् महाप्राण हैं तथा आकाश को धारण करते हैं ।[२]

मित्र तथा वरुण ने रेवत् अर्थात् अन्न की रचना की तथा रात्रि और दिन में उसकी रक्षा करते हैं ।[३]

असुर वरुण सभी लोकों का राजा है। जितने प्रकाशमान देव अर्थात् तारे हैं उनका भी वह राजा है तथा इस पृथ्वी के मरणशील जीवो का भी वह राजा है ।[४] पूजा प्रकाशमान वरुण के लिए है, जो अदिति का पुत्र है । सारा ससार वरुण की महती दया पर निर्भर करता है ।[५]

अदिति का पुत्र वरुण जलो का निवासस्थान है । वरुण के ऋत से ही नदियाँ तीव्रगति एव अथक होकर पृथ्वी पर वहती हैं ।[६] मित्र तथा वरुण का स्वर्णमय रथ आकाश में विद्युत-सा प्रकाशमान होकर चमकता है ।[७] इसी रथ से मित्र तथा वरुण सारे ससार को देखते रहते हैं ।[८]

मित्र तथा वरुण ऋत के गोपा हैं[९] अर्थात् धर्म के रक्षक हैं ।

ज्योतिष्मान सूर्य, मित्र तथा वरुण की माया है तथा उनका अस्त्र भी है । इसीसे वह हानिकारक तथा जलनिरोधक प्रभावो को दूर करके पृथ्वी पर वृष्टि भेजते हैं ।[१०]

वरुण उपासको को दु ख क्लेश इत्यादि के पाश से मुक्त करते हैं ।[११]

पवित्र पाशोवाले मित्र तथा वरुण दैवी अश्वो के समान आते हैं तथा अदिति के गर्भ, अर्थात् आकाश एव अतरिक्ष को, अपने ऋत से परिपूर्ण कर देते हैं । इनका जन्म मनुष्य के शत्रुओ के विनाश के लिए ही होता है ।[१२]

मित्र तथा वरुण जलनिरोधक वृत्र को उसकी समस्त सेना के साथ मारने वाले हैं ।[१३]

सहस्राक्ष अर्थात् सहस्रो तारात्रो से पृथ्वी को देखनेवाले मित्र वरुण ने नदियो के प्रवाह के लिए उनके स्रोत खोदे ।[१४]

वरुण का शोभायमान चक्षु सूर्य आकाश मे उदय होकर अपने उष्ण तेज से मृत्युलोक वासियो को जागृत करके उनको अपने-अपने कार्यों में सलग्न करता है । मित्र वरुण ने ही सवत्सर वनाया । उन्होंने पृथ्वी को मनुष्यो के निवास के हेतु फैला दिया ।[१५] आकाशरूपी समुद्र में सूर्य ही मित्र तथा वरुण का दीप्तिमान जहाज है जिसमें बैठकर वे ससार का अवलोकन करते हैं । मित्र वरुण

(१) १।१५१।३ (२) १।१५१।४ (३) १।१५१।६ (४) २।२७।१० (५) २।२८।१ (६) २।२८।४ (७) ५।६२।७ (८) ५।६२।८ (९) ५।६३।१ (१०) ५।६३।४ (११) १।२४।१५ २।२८।५ (१२) ६।६७।५ (१३) ६।६८।२ (१४) ७।३४।१० (१५) ७।६१।१—४

तथा अर्यमा आकाश[1], अतरिक्ष एव पृथ्वी को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर देते हैं । वह जल को शुद्ध कर देते हैं । वे देवताओ में असुर अर्थात् अत्यन्त बलशाली हैं । उन्होने ही वृष्टि द्वारा पृथ्वी को उपजाऊ बनाया । उन्होने ऋत अर्थात् धर्म का उल्लघन करने वालो के लिए अपने पाश बनाये ।[2]

यह प्रात, मध्याह्न तथा सध्या के सूर्य ही मित्र, अर्यमा तथा वरुण के चक्षु हैं । अग्नि की लपटें उनकी जिह्वा हैं जिनसे वे हवि ग्रहण करते हैं । वे सभी लोको को धारण करके उन्हें नियमबद्ध करते हैं । उन्होने सवत्सर तथा मासरूपी काल के भाग बनाये ।[3]

वरुण का निवास जल में है ।[4] ऋग्वेद की इन वन्दनाओ में मित्र वरुण अथवा मित्र वरुण अर्यमा सूर्य के साथ सम्बद्ध आकाश के देवता हैं । वरुण देवता ग्रीस में ओरानोस के नाम से आकाश के ही देवता रहे[5] पर भारत में उन्हें समुद्र अथवा जल का देवता माना गया । वैदिक आकाश भी समुद्र ही है । कालान्तर से आकाश वा अन्तरिक्षरूपी समुद्र के निवासी वरुण का निवास पार्थिव समुद्र अथवा जल में समझा गया । आकाश तथा पृथ्वी के सयोग से उत्पन्न मित्र वरुण प्रात तथा सध्या के सूर्य हुए । सध्या तारा शुक्र वा भृगु ऐतरेयब्राह्मण में वरुण का पुत्र माना गया तथा वरुण के असुर होने के कारण शक्र असुरो के गुरु हुए । वरुण का पाश गुरुत्वाकर्षण की भाँति समस्त स्थावर जगम सृष्टि बाँधनेवाला था। अथर्ववेद मे तक्मन् वा शीतज्वर को ही वरुण का पाश माना गया है तथा इससे एव हृद्रोग से मुक्ति के लिए वरुण की प्रार्थना की गई है । बैबीलोन के देवता "या" तथा प्राचीन पारसी धर्म के अहुर मजदा भी वरुण की भाति समुद्र तथा नदियो के अधिपति थे एव उनमें भी आसुरी शक्ति तथा माया थी । ईरान, बैबीलोन आदि में "मित्र" नाम से सूर्य सौम्यरूप की पूजा हुई तथा वरुण वहाँ के महत्तम पूजनीय असुर अहुर मज़दा हो गये । अहुर मजदा का अर्थ होता है महाप्राण वृद्धि अथवा वृद्धिशील प्राण । परन्तु जैसे वेद में वरुण का नाम मित्र के साथ सम्बद्ध है वैसे ही आवेस्ता में आहुर का नाम मित्र के साथ साथ आता है । आवेस्ता के अहुर तथा वैदिक वरुण के अनेक गुण एक जैसे हैं पर उनमें कई भेद भी हैं । यथा आवेस्ता मे वे मित्र के पिता माने गये हैं । वास्तव मे अहुर मजदा अतिप्राचीन देवाधिदेव असुर द्यौस् तथा वरुण दोनो के सम्मिश्रण हैं तथा कम से कम जारायुष्ट्रा की

---

(१) ७।६३।२, ४ (२) ७।६५।२, ३ (३) ७।६६।१०, ११ (४) ७।८८।४
(५) Max Muller-Contributions P 416

गाथाओ में उन्हें एकमात्र परमपिता परमेश्वर के रूप में ही पूजा गया है । अर्यमा आवेस्ता में ऐर्यमन नामक ईरानी अहुर हो गये जिन्हे स्वास्थ्य का सरक्षक माना गया ।[१]

मित्र अर्यमा तथा वरुण तो आदित्यो में प्रधान हैं, परन्तु ऋग्वेद में अन्य कई आदित्यो के नाम आये हैं । पूपा नाम से पृथ्वी को भी आदित्य माना गया है (ऋ० स० १।२३।१३,१५–निघ० १।१) । सविता नाम से आदित्यो के प्रतीक नित्य जगत् को प्रकाशित करनेवाले सूर्य देवता की वन्दना भी हुई है । सविता को "ईशान वार्याणाम्" जलो का राजा कहा गया है ।[२] सविता अधकारमय कृष्ण रात्रि को दिन में परिणत करते हैं । उनका रथ सुवर्णमय है जिससे वह सारे भुवनो को देखते हैं ।[३] सविता असुर अर्थात् अत्यन्त वलशाली हैं ।[४] सविता के रथ के सात घोडे हैं अर्थात् सात रग के प्रकाश हैं ।[५] सूर्य इस कृष्ण जगत् को हरित् किरणो से भर देता है ।[६]

ऋक्सहिता में एक स्थान पर मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अश यही छ आदित्य कहे गये हैं ।[७] भग की व्याख्या निरुक्तकार ने "भगो भजते" इस प्रकार की है अर्थात् जिसके द्वारा भोगो का सेवन किया जाय । दक्ष कार्य-कुशल को कहते हैं । अश वह है जिसके अशु वा किरण हो । इन छओ आदित्यो के साथ पूपा अर्थात् पृथ्वी का पुरुप देवता मिल कर ऋग्वेद के सात आदित्य ए जिन्हे अदिति ने देवताओ को दिया तथा आठवे मार्तण्ड को पृथ्वी की ओर फेंका ।[८] पर ऋग्वेद में इन्द्र को भी अदिति का पुत्र कहा गया है । ऋग्वेद में धाता विश्वकर्मा का नाम है, परन्तु ब्राह्मणो में यह भी आदित्यो में से एक का नाम हो गया । भग देवता का नाम पारसी धर्मग्रन्थ आवेस्ता में भी "वघ" रूप में आया है । ईरान में भी यह पूजा के ही पात्र थे ।[९] पौराणिक काल तक आदित्यो की सख्या वारह निश्चित हो गई थी । विष्णु-पुराण में धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान, पूपा, पर्जन्य, अश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु यही चैत्र से आरभ करके वारह महीनो के वारह आदित्य माने गये हैं ।[१०] भिन्न-भिन्न मास में अथवा प्रात मध्याह्न सध्या के ही सूर्य में जो कुछ प्रभाव, गुण आदि का अन्तर होता है उससे यह स्वाभाविक था कि

(१) Max Muller-Contributions P 125 & 547, Zoroastrian Theology-Dhalla P 19 & 119 (२) ऋ० सं० ४।२४।३ (३) १।३५।२ (४) १।३५।७ (५) १।५०।८ (६) १।११५।५ (७) २।२७।१ । (८) ऋ० सं० १०।७२ (९) Essays on the Religion of the Parsis—273 (१०) वि० पु० २।१०

रुद्र आकाश, अन्तरिक्ष एव पृथ्वीरूपिणी तीन माताओ के पुत्र त्र्यम्बक है ।[1]

यजुर्वेद (वाजसनेयी सहिता) के सोलहवे अध्याय में रुद्र को मन्यु अर्थात् क्रोधयुक्त, इषव अर्थात् शत्रुवधकारी, शिवा अर्थात् कल्याणकारिणी एव तनू अर्थात् विस्तृता प्रकृति को अघोर अर्थात् उपद्रवहीन करनेवाला कहकर पूजा गया है । रुद्र को गिरित्र अर्थात् पर्वतो का रक्षक वा उनका उल्लघन करानेवाला गिरीश भी कहा गया है ।[2] उज्ज्वल तथा धूम्रवर्ण रुद्र दोनों ही शत्रुओं अर्थात् जल-निरोधक हिंसक शक्ति का निवारण करनेवाले है । रुद्र अहि अर्थात् हिंसको के अधराची अर्थात् उनको नीचा दिखानेवाले है ।

रुद्र नीलग्रीव है । उनको सहस्रो आँखें है। रुद्र वामन है अर्थात् वाम अथवा प्रशस्त विज्ञान के स्वामी है । रुद्र रोगो के भेषजी अर्थात् वैद्य है । उनका धनुष सहस्रो योजन विस्तृत है ।

भारतीय चान्द्र नक्षत्रो मे एक रुद्र अथवा आर्द्रा नक्षत्र भी है । सूर्य आषाढ महीने में इस नक्षत्र में आता है तब से ही वर्षा का आरभ होता है। उस समय रात्रि के आकाश में दक्षिण ओर धनुराशि अथवा पूर्वाषाढ़ा एव उत्तराषाढा नक्षत्रो का उदय होता है । किसी ताराविशेष से वर्षा का सम्बन्ध भारत ही नही बैबीलोन तथा मिस्र में भी माना गया था। इस्तर तथा सोथोस के नाम से लुब्धक नक्षत्र इन देशो में वर्षा का लानेवाला माना गया । रुद्र का 'धनुष' धनुराशि भी वर्षा के आरभ में आकाश में दिखाई देता है। भारत मे पीछे चलकर ११ रुद्र माने गये। रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त तथा चित्रा ये ग्यारह नक्षत्र भी है जिनमें सूर्य के रहने से वर्षा होती है। 'रुद्र' के कुछ वर्णन तो सूर्य के समान है पर शुक्र तथा वभ्रु एव भिन्न-भिन्न दिशाओ के रुद्र इन वर्णनो से ऐसा जान पडता है कि कदाचित् रुद्र कुछ विशेष ताराओं को ही कहते थे। रुद्र का धनुप आकाश वा तारामडल-विशेप था तथा उनके वाण वर्षा-विंदु थे ।

रुद्र का नीलग्रीव होना ऋग्वेद में कही भी नही लिखा है पर यजुर्वेद में रुद्र की वन्दना में ऐसा वर्णन है। मिस्र के राजा 'फारो' तथा उनके अधिकाश देवता 'नीलम' मणि की माला पहनते थे।[3] रुद्र वा रुद्रो का स्थान आकाश भी नीला था। सम्भवत· तत्कालीन राजकीय आभूपण अथवा आकाश के रग से ही रुद्र के नीलग्रीव होने की कथा चल निकली ।

---

(१) ऋ०स० ७।४६।१२ (२) वा० स० ३।६१ (३) Egyption Myth and Legend P. 55

मिस्र के देवता 'असरआ' अथवा ओसायरिस की भाति रुद्र भी 'त्र्यवक' अर्थात् आकाश, अन्तरिक्ष एव पृथ्वीरूपिणी तीन माताओवाले है ।[१]

रुद्र अथवा शिव वृष्टिकारक अथवा वृषभ मेघो पर आरूढ होने के कारण वृषभवाहन है । कदाचित् अनार्यो के प्रधान देवता भी वृषभवाहन ही थे । रुद्र द्वारा दक्ष यज्ञ के ध्वस आदि की कथा आधी-तूफान द्वारा सूर्य के छिप जाने तथा सूर्य द्वारा रक्षित सृष्टि के नाश का वर्णन हो सकता है ।

वनस्पति तथा पशुओ को जल से तृप्त करनेवाले उनके राजा रुद्र को वनस्पति तथा पशुओ से परिपूर्ण पर्वतो का भी स्वामी माना गया । इस रूप में वह पर्वतो से निकलनेवाली नदियो के तथा विशेपत गगा के धारण करने वाले हुए ।

महाकाव्य तथा पुराणो में रुद्र की प्रथम पत्नी दक्षपुत्री सती थी । मिस्र के प्राचीन देवता 'रव्नुमु' जलप्रपात के देवता थे तथा उनकी स्त्री 'सती' नाम की 'आकाशदेवी' थी । 'रव्नुमु' पर्वत अथवा पत्थर के ढोको के देवता थे । 'सती' प्राचीन जातियो की विश्वरूपिणी मातृशक्तियो में से एक थी । दक्ष यज्ञ के ध्वस के पश्चात् रुद्र सती के मृत शरीर को लेकर आकाश मे विचरे थे तथा यत्र-तत्र सती के शरीर के खड गिर पड़े थे । उल्का के रूप में 'आकाशखड' अब भी गिरते दीख पडते है ।

शिव के गले में सर्पो की माला थी। गीता मे भगवान के विराट शरीर मे अर्जुन ने ईश अर्थात् शिव अथवा भूतेश नामक तारामडल को तथा आकाश के तारा शृखलारूपी दिव्य सर्पो को भी देखा था। अथर्ववेद मे तथा चीनी धार्मिक कथाओ मे पृथ्वी दिव्य सर्पों से घिरी हुई कही गयी है ।

रुद्र के दो नेत्र सूर्य तथा चन्द्रमा है तथा तीसरा नेत्र अग्नि है जो ससार को भस्म कर देता है। अग्नि को अनेक मन्त्रो में देवता का तीसरा नेत्र कहा गया है। ऐतरेयब्राह्मण मे मृगव्याध-मडल वा उस मडल मे स्थित अत्युज्ज्वल लुब्धक तारा को पशुपति रुद्र वताया गया है जिसकी रचना अपनी पुत्री रोहिणी को वुरे विचार से पीछा करनेवाले कालपुरुपमडल-रूपी प्रजापति को दण्ड देने के हेतु हुई थी । प्रजापति वा कालपुरुप मडल के हृदय में तीन तारे है जो त्रिकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है । रुद्र द्वारा फेंके गये त्रिशूल के ये तीन छेद है ।[२] पशुओ का अधिपति होने के कारण मृगव्याध पशुपति हुआ तथा व्याध वा किरात के रूप मे कालपुरुप-मडलान्तर्गत मृगशिर वा मृग नक्षत्र के लिए महाभारत में

---

(१) ऐ० ब्रा० १।६।१० यजुर्वेद ३।५८ (२) ऐ० ब्रा० ६।१३

इस देवता से अर्जुन का युद्ध हुआ। कदाचित वैदिक काल में कालपुरुष-मडलान्तर्गत पाश्चात्य अलफा ओरायनिस (Orionis) तारा रुद्र नाम से नही विख्यात था तथा यह नाम लुब्धक तारा वा मृगव्याध-मडल के लिए व्यवहार में था। मध्यपूर्व का वृष्टिकारक तारा भी यही था।

ऋग्वेद मे रुद्र को मरुद्वृद्ध अर्थात् मरुतो को बढानेवाला कहा गया है तथा मरुतो को रुद्र का पुत्र कहा गया है। मरुद्गण वेगवान वायु थे इसमें सन्देह नही, पर इनका जो वर्णन ऋग्वेद मे है उससे महाकाव्य तथा पुराणो की अनेक कथाओ का अर्थ स्पष्ट होता है। निरुक्तकार ने मरुत की व्याख्या इस प्रकार की है—'मरुतो मितराविणो मितरोचिनो वा महद्द्रवन्तीति वा।' जो महान रव अर्थात् शब्द करे, जो रुचिमान वा शोभावान हो अथवा जो महान वृष्टि का कारण हो, वह मरुत है।[१] विद्युत के साथ मरुत् अपने अकालनाशक रथ मेघ में आरूढ होकर आते है।[२] मरुतो ने इन्द्र को वृत्र के वध में सहायता दी।[३] पृथ्वी मरुतो के भय से कापती है।[४] मरुतो की माता पृश्नि वा अन्तरिक्ष है। वे देवताओ की वन्दना करनेवाले है अर्थात् मरुतो का शब्द उनके द्वारा की गयी देव-वन्दना है अथवा देवताओ की वन्दना से ही मरुद्गण बलशाली हुए है।[५] मरुद्गण निर्ऋति अर्थात् पाप, क्लेश वा अनावृष्टि-रूपी विपत्ति का हनन करनेवाले है। वे रुद्र के समान धनुर्धर है।[६] मरुद्गण पर्वतो को हिलाते है तथा वृक्षो को उखाड फेकते है।[७] रुद्र के सात महान कर्मवाले पुत्र मरुद्गण जो द्यावा पृथ्वी से उत्पन्न हुए है, अपनी वीरता से सुशोभित हो रहे है।[८] सात रघुष्यद् तथा रघुपत्वान् अर्थात् तीव्र गति एव तीव्रकर्मा मरुद्गण अपने बाहुओ से सारी सृष्टि को अन्धकारमय करके विकम्पित कर रहे है।[९] मरुत् विष्णु अर्थात् विश्वव्यापी है तथा वृष्टि का सर्जन करने के लिए द्रुतगति से स्थावर जगम सृष्टि को विकम्पित करते हुए आते है।[१०] मरुद्गण यमुना अर्थात् तीव्र गतिवाली जल-धारा से राधा अर्थात् धन की सृष्टि करते है।[११] मरुत् विष्णु के सहचर है।[१२]

ऋग्वेद मे मरुतो की सख्या सात है। सात सख्या को चुनने का कारण स्पष्ट नही है पर इस सख्या का प्राचीन देशो में व्यवहार कई स्थानो पर प्रचलित था। कदाचित सप्तर्षि वा सूर्य, चन्द्रमा तथा पाच ताराग्रह मिलाकर

---

(१) निरुक्तम् ११।१।१३ (२) ऋ० स० १।८८।१ (३) १।२३।६ (४) १।३७।८ (५) ऋ०स०१।३८।४ (६) १।३८।६-७ (७) १।३९।४ (८) १।८५।१ (९) १।८५।६ (१०) १।८५।७ (११) ५।५२।१७ (१२) ५।८७।१

सात ग्रहों के कारण ही इस सख्या का ऐसा महत्व हुआ। ईरान में 'आमेश स्पेन्टास' के नाम से तथा भारत मे सात निष्ठाओ के नाम से इन सप्तर्षि वा ग्रहो के गुणो की प्रसिद्धि हुई। वास्तव में मरुतो की सख्या सात से अधिक थी। इस कारण रामायण-काल तक मरुतो की सख्या सात से बढकर उनचास हो गयी थी। विध्वसकारी होने के कारण मरुतो को रामायण में दिति का पुत्र बनाया गया। बालकाण्ड रामायण के ४६वे सर्ग मे उत्तर विहार की विशाला नगरी अथवा अर्वाचीन वैशाली के समीप कौशिकी नदी के तट पर कुशप्लव नामक स्थान पर मरुतो की उत्पत्ति बतायी गयी है। देवासुरसग्राम के पश्चात् सुरो द्वारा अपने पुत्रो के नष्ट होने पर दु खित हुई दिति ने अपने पति मारीच कश्यप से इन्द्र को मारनेवाला पुत्र मागा। मारीच कश्यप ने उसे ऐसा पुत्र तो दिया पर अपवित्र दशा में हो जाने के कारण दिति के गर्भ मे प्रवेश करके इन्द्र ने उस गर्भ के सात टुकडे कर दिये। जब वे टुकडे रोने लगे तब उन्हें 'मा रुद' मत रो, ऐसा कहते हुए इन्द्र ने प्रत्येक के सात-सात टुकडे कर दिये। यही उनचास मरुद्गण हुए।

अँगरेजी-पुस्तक 'वर्ल्डस इन कौलीजन'[1] मे धूमकेतुओ को मरुद्गण सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है पर वेदमन्त्रो तथा उनके पश्चात् के ग्रन्थो के अध्ययन से ऐसा नही जान पडता। वैदिक काल मे मरुद्गण के पुत्र थे पर पौराणिक काल में देवसेनानी स्कन्द वा कार्तिकेय तथा गणेश उनके पुत्र हुए, जैसा अग्निचरित्र मे बताया जा चुका है। कार्तिकेय वा स्कद अग्नि के ही नाम हैं। ऋग्वेदोक्त अग्निपुरुष देव होकर भी इला, सरस्वती आदि के नाम से मातृदेवी के गुणो का प्रतीक है, अत रुद्र की भाति अर्द्धनारीश्वर है। गणपति नाम ऋग्वेद मे एक स्थान पर ब्रह्मणस्पति (अग्नि) के लिए[2] तथा एक स्थान पर इन्द्र के लिए[3] आया है। अग्नि तथा इन्द्र दोनो ही मे रुद्र के अनेक गुण है। इन्द्र का भी उदर (सोमपान के कारण) गणपति गणेश के उदर की भाति विस्तृत है। कदाचित किसी प्राचीन आदिम देवता के कुछ गुणो का रुद्र के गुणो से सम्मिश्रण करके ही गणपति गणेश की कल्पना परिपक्व हुई।

यजुर्वेदोक्त रौद्र मन्त्रो में से कुछ तो निश्चय आर्य सेनापतियो अथवा सैनिको की वन्दना मे कहे गये हैं, यथा—'प्रमुंच धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इपव परा ता भगवो वप'॥ (वा स० १६।९)। हे भगवन रुद्र अपने

(१) Worlds in Collision–Collanez-by Velikovsky (२) ऋ० स० २।२३।१
(३) ऋ० मं० १०।११२।९

धनुष की प्रत्यचा को खीच कर छोडो तथा आगे-पीछे दोनो ओर अपने हाथ के बाणो को फेको । 'विज्यन्धनु कपर्द्दिनो विशल्यो वाणवा उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषगधि ॥' (वा स १६।१०)। इस शिरत्राणधारी[1] योद्धा का धनुष प्रत्यचाहीन न हो जाय, इसके बाण अपनी नोकें न खो बैठें । इसका तरकस बाणो से हीन न हो जाय ।

आठवाँ अध्याय

देवी दुर्गा

यजुर्वेद में रुद्र की अम्बिका नाम की एक बहन थी। अम्ब 'शब्द' वेदो मे जलराशि के लिए व्यवहृत हुआ है। केनोपनिषद् में उमा हैमवती अर्थात् हिम वा हिमालय से निकली जलराशि का नाम आया है। तैत्तिरीय अरण्यक में अम्बिका रुद्र की पत्नी है। उनके दुर्गा तथा पार्वती आदि नाम भी तैत्तिरीय अरण्यक में व्यवहार में आ गये है। महाकाव्यो में गगा भी शिव की पत्नी थी। दुर्गा के रूप में अजेय तथा काली के रूप में अतिशयकराला उमा जगज्जननी कहलायी। उन्होने महिषासुरादि राक्षसो का वध किया।

अदिति नाम से आकाश तथा अन्तरिक्षरूपिणी 'माता' की वन्दना ऋग्वेद में अवश्य है पर अदिति भी सभी देवताओ की माता नही है तथा अदिति को निखिल विश्व की जननी मान कर देवताओ में प्रधान स्थान नही मिला। अरमति नाम से भक्ति अथवा उर्वरा पृथ्वी की देवी की वन्दना ऋग्वेद में है।[1] कुमारी अरमति घृत का उपहार लेकर प्रात-सध्या अग्नि के पास आती है। अरमति आकाशिक नारी है।[2] पर जहाँ ऋग्वेद में इने-गिने स्थानो पर ही अरमति की वन्दना होकर रह गयी वहाँ आवेस्ता मे अर्मैती नाम से कृषि की देवी को अत्यधिक प्रधानता मिली। उमा, पार्वती, दुर्गा व काली कदाचित आर्यधर्म मे कही बाहर से ही आयी। प्राचीन धार्मिक कथाओ के विशेषज्ञ डोनाल्ड-ए मैकेंजी का कहना है कि 'मातृपूजक' जातियाँ वे हुई जो स्थिर रूप मे कही निवास करके खेती-बारी जैसा काम करने लगी। ऐसे समाज में स्त्रियो का आदर आवश्यक था। इसके विपरीत खानाबदोश जातियो को अपने योद्धाओ की वीरता पर निर्भर करना था अत. वे पुरुष-शक्तियो की

---

(१) ऋ० स० ७।१।६, ७।३४।२१, १०।६२।४-५ (२) ऋ० स० ५।४३।६

उपासक बनी। भारत में भी आर्य जब स्थिर होकर खेती-बारी करने लगे तभी उन्होंने मातृपूजा को प्रधानता दी।[1] हौग के अनुसार ईरान का पारसी धर्म आर्यों के वैदिक धर्म से तब अलग हुआ जब ईरान में पशुपालन छोड़कर कृषि पर जोर दिया जाने लगा।[2]

उमा हैमवती हिमालय की पुत्री थी। हिम का अर्थ पिघलनेवाला काल भी है। अत हैमवती उमा, काल अथवा समय रूप से सृष्टि के क्षय एव उत्पत्ति का कारण अथवा कालरूपी रुद्र की पत्नी होकर पूजित हुई। काल की पुत्री होकर भी पत्नी होना असगत नही है क्योकि नारी-शक्ति पुत्री, पत्नी तथा माता सभी है। इसी विचारधारा ने तान्त्रिक धर्म मे कुमारी कन्या की पूजा का रूप लिया। इस सम्बन्ध में एक मार्के की बात यह है कि भूतेश तारामडल (स्वाती नक्षत्र) के समीप ही कन्याराशि के तारे हैं तथा अनेक आदिम जातियाँ कन्या-मडल को भूतेश-मडल की स्त्री मानती हैं।

पार्वती उमा की पुत्री है। पर्वत की पुत्री नदी हो सकती है परन्तु वेदो में 'पर्वत' शब्द मेघ के अर्थ में भी व्यवहृत हुआ है। यजुर्वेद प्रथम अध्याय के उन्नीसवें मन्त्र में वेदवाक्य को 'पर्वती' अर्थात् ज्ञानवती तथा पृथ्वी को पार्वतेयी कहा गया है। मेघ की पुत्री वाक् अर्थात् तडित् से उत्पन्न शब्द ने अपने को स्त्री रूप मान कर ऋग्वेद के दशम मडल के १२५वे सूक्त में स्वय अपना वर्णन किया है। वह सभी देवताओ की सहचरी है, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनीकुमारो को वह धारण करती है। रुद्र के धनुष की प्रत्यचा चढ़ाकर उन्हें ब्रह्मद्वेषियो की हत्या मे सहायता प्रदान करती है। मेघरूपी पर्वत की पुत्री वाक् रुद्र की सहायिका सगिनी है। मेघ से ही जल अथवा जलराशि गगा की उत्पत्ति है। अत वाक् ही गगा की बहन उमा है।

वाक्देवी ऋग्वेद में गरणशीला 'गौरी' के नाम से भी वर्णित है। इस रूप में वह जल तथा जल से उत्पन्न सभी जीवो की स्रष्टा मानी गयी है (ऋ०स० १।१६४।४१,४२)।

उमा नाम बैबीलोन की मातृदेवी 'अमा' से मिलता-जुलता है जो मनुष्य तथा अन्य समस्त स्थावर जगम सृष्टि की माता थी। 'अमा' बैबीलोन मे 'इश्तर' तारा, भारतीय लुब्धक तथा पाश्चात्य सिरिअस नक्षत्र को ही कहते थे। इस तारा का ही दूसरा नाम 'निनसुन' अर्थात् नाश करनेवाली देवी था।

---

(१) Egyption Myth and Legend XXXIII (२) Essays on the Religion of Parsis

मिस्र में सोखित के नाम से इसी तारारूपिणी देवी ने सूर्य देवता 'रा' के शत्रुओं को मारा था ।[1] यह हत्या गर्मी की धूप, वृष्टि, नदियो में बाढ़ तथा सक्रामक रोगो द्वारा ही होती थी । सूर्य जब आर्द्रा वा लुब्धक नक्षत्रो के पास रहता है तब सन्ध्या आकाश में स्वाती नक्षत्र अथवा भूतेश-मडल लगभग अपने सर्वोच्च स्थान पर होता है तथा उसी के दक्षिण कन्याराशि अथवा चित्रा नक्षत्र के तारे दिखाई देते हैं । कन्याराशि, चित्रा नक्षत्र, तडित् वा जलप्रवाह-रूपिणी उमा वर्षा के आरभ में वनस्पति की वृद्धि के कारण सृष्टि की माता मानी गयी ।

जगज्जननी केवल सृजन ही नहीं सहार भी करती हैं । मिस्र की सोखित वा सेखित का शिर सिंहिनी का था तथा उनके हाथ में खग रहता था । सेखित का दूसरा नाम 'सूर्य की आँख' भी था । मिस्र की ही एक और 'मातृदेवी' 'तेफनुतने' ने सिंहिनी का रूप धारण किया था । बेबीलोन में आदिदेव अप्सु तथा उनकी स्त्री तिआमत दोनो ही उच्छृंखलताप्रिय थे तथा उनके ही पौत्र मेरोदच अर्थात् सूर्य को ससार की रक्षा के लिए उनसे युद्ध करना पडा था ।[2]

हिन्दू 'मातृदेवी' का एक नाम काली भी है । चीनी कन्फ्यूसिअस-धर्म में आकाश को 'खिअन' तथा पृथ्वी को 'स्वान्' कहा गया है । कन्फ्यूसिअस की धर्मपुस्तक में इन शब्दो की व्याख्या इस प्रकार है—'खिअन आकाश है, वृत्ताकार है, रास्ता है, पिता है, मणि है, धातु है, शीत है, हिम है, उत्तम अश्व है . वृक्षो का फल है । स्वान् पृथ्वी है, माता है, वस्त्र है, हडिका है, धन है गो है कृष्ण वर्ण है . पृथ्वी पर की कृष्ण वर्ण उपजाऊ मिट्टी है । .'[3] पृथ्वीमाता ही काली है । ऋग्वेद के गौरवर्ण द्यौष्पितर तथा कृष्णा पृथ्वी मिलकर ही अर्धनारीश्वर द्यावापृथ्वी हैं जिनसे निखिल सृष्टि की उत्पत्ति है ।

'दुर्गासप्तशती' में 'देवी' के अनेक पराक्रमो के वर्णन हैं । दस्युओं के साथ देवीके जो युद्ध हुए वे बहुत कुछ इन्द्र तथा वृत्र के ऋग्वेदोक्त युद्ध से मिलते-जुलते हैं । ऋग्वेद के मन्त्रो के आधार पर इन सभी युद्धो की तथा 'देवी' से सम्बद्ध अन्य घटनाओं की आकाशिक व्याख्या सम्भव है ।

दस्युओं से 'देवी' के युद्ध का सर्वप्राचीन वर्णन सौर-पुराण में है । इस पुराण में दी हुई कथा के अनुसार शिव ने ही अपनी मातृशक्ति से 'शिवा' की सृष्टि की । इन्द्र की प्रार्थना सुनकर शिवा ने रक्ताक्ष तथा धूम्राक्ष नामक

---

(१) Myths of Babylonia. P 57-100 (२) Myths of Babylonia P. 139 onwards (३) Myths of China and Japan. P. 265-66

राक्षसो को ससैन्य नष्ट कर दिया । इस युद्ध में शिवा ने अपने तीन शिर अर्थात् आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी एव बीस हाथ अर्थात् दश दिशाओ में से प्रत्येक में दो-दो हाथ बनाये थे । रक्ताक्ष तथा धूम्राक्ष एव उनके अनुचर वैदिक वृत्र तथा वृत्र की सेना जैसे ही थे ।

जब दक्षयज्ञ के ध्वस के लिए रुद्र ने वीरभद्र नामक विकराल पुरुष को उत्पन्न किया तब उमा भी भद्रकाली का रूप धारण करके उस यज्ञ के विध्वस में सलग्न हो गयी ।

दुर्गासप्तशती में दिये गये वर्णन के अनुसार देवी की उत्पत्ति सर्वप्रथम तब हुई जब कल्प के अन्त में योगनिद्रा में सोये हुए भगवान विष्णु के कानो के मैल से उत्पन्न मधु तथा कैटभ नामक दो राक्षसो ने ब्रह्मा अर्थात् प्रजापति अथवा सवत्सर को नष्ट कर देना चाहा । ब्रह्मा ने उस समय देवी का जिन शब्दो में आवाहन किया वह ऋग्वेदोक्त 'वाक्' अर्थात् तडित् अथवा विद्युत के स्वकथित वर्णन से बहुत-कुछ मिलते हैं । दुर्गासप्तशती में देवी का आवाहन करते हुए ब्रह्मा कहते हैं—'देवि ! तुम ही स्वाहा, स्वधा तथा वषट्कार हो । स्वर भी तुम्हारे रूप है । ऊकार भी तुम ही हो । देवि ! तुम ही इस विश्व ब्रह्माण्ड को धारण करती हो । खधारिणी शूलधारिणी गदा, चक्र, शख तथा धनुष धारण करनेवाली हो । वाण, भुसुण्डि तथा परिघ ये भी तुम्हारे अस्त्र है ।' ऋग्वेद में वाक् स्वय कहती है—'मैं देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवो के रूप में विचरती हूँ । मैं ही ब्रह्मद्वेषियो का वध करने के लिए रुद्र के धनुष की प्रत्यचा चढाती हूँ ।'

महाभारत में तो मधु के मारनेवाले मधुसूदन भगवान विष्णु स्वय हैं । दुर्गासप्तशती के अनुसार भी मधु तथा कैटभ को मारा था विष्णु ने ही, पर देवी ने इसमें उनका साथ दिया था । वैदिक काल में 'मधु' वर्ष के प्रथम मास का नाम था । मधु तथा माधव ये दोनों महीने वसन्त ऋतु के होते थे । अत मधु सवत्सर का शिर था । बृहदारण्यकोपनिषद् में सवत्सर तथा यज्ञ दोनो को ही प्रजापति कहा गया है । यज्ञ तथा यज्ञीय अश्व का अनेक स्थानो में समीकरण किया गया है । यज्ञ में अश्व का वध होता था । उषा को भी यज्ञीय अश्व का शिर कहा गया है तथा ऋग्वेद के इन्द्र उषा के रथ का ध्वस करनेवाले है ।

छान्दोग्योपनिषद् में आदित्य को देवमधु, उसकी किरणो को भ्रमर तथा दिशाओ को मधुनाडी कहा गया है ।[1] इन्द्र के मेघ से सूर्य आच्छादित हो जाता

(१) छा० उ० १।३

है तथा सूर्य के तिरोहित होने पर उसके स्थान पर तडित् अर्थात् वाक् देवी का प्रकाश सूर्य के समान रहता है। देवी द्वारा मधु का यही वध है। कैटभ अथवा केतु भी चन्द्रमा अथवा सूर्य ही है जो अकेतु अर्थात् अचेतन को केतु अर्थात् चेतनशील करता है। मिस्र की देवी 'आइसिस' भी महर्षि अम्भृण की पुत्री 'वाक्' की भाति प्रथमत एक मानुषी स्त्री थी पर पीछे उन्होंने अपनी अद्भुत शक्ति से सूर्यदेव 'रा' को वस में कर लिया।[१] धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड, रक्तवीज, निशुम्भ, शुम्भ इन सभी राक्षसो का वर्णन ऋग्वेदोक्त वृत्र तथा उसके अनुचरो के वर्णन से मिलता-जुलता है। महिषासुर भी महान असुर सूर्य ही है जिसकी माता अदिति ने ऋग्वेद मे अपने पुत्र आदित्य को महिष अर्थात महान कह कर पुकारा। महिषासुर का वध भी वृष्टि द्वारा सूर्य की लोकनाशक प्रवृत्ति के दमन का रूपक है अन्यथा महिषासुर-वध महान आच्छादक वृत्र का ही वध है। विष्णु द्वारा मधुकैटभ का वध कदाचित सवत्सर द्वारा सूर्य तथा चन्द्रमा का नियमवद्ध होना है। वाक् ही विष्णु की 'शक्ति' को प्रत्यक्ष करनेवाली है।

महिषासुरमर्दिनी देवी का जन्म विष्णु अर्थात् यज्ञ तथा रुद्र अर्थात् वायु के क्रोध से हुआ। देवी के शरीर में ही सभी देवता है तथा देवी ने उन सभी से आयुध लेकर असुर पर प्रहार किया।[२] देवी ने 'अट्टहास तथा गर्जन के साथ' महिषासुर पर प्रहार किया। देवी तथा असुर ने एक दूसरे पर दीप्तिमान अस्त्र फेंके। असुरो के रक्त से वडी-वडी नदियाँ वहने लगी। ऋग्वेदोक्त वृत्र भी मारा जाकर जल के रूप में पृथ्वी पर आ गिरा। असुरो के रक्त की नदियो के विषय मे अगरेजी-पुस्तक 'वर्ल्ड्स इन कॉलीजन' के लेखक ने वड़े-वडे अटकल लगाये है। पर मध्यपूर्व की वडी-वडी नदियाँ नाइल, टाइग्रिस, यूफ्रेट्स आदि वाढ़ के दिनो मे मिट्टी के कारण लाल रग की ही हो जाती थी तथा अब भी भारत की नदियो का यही हाल होता है। मिस्र में नाइल नदी की वाढ को 'असरआ' अथवा 'असुर' 'ओसाइरिस' के मृत शरीर वा रक्त मानते थे।

मिस्र में यव आदि अन्न की फसल को काटते समय 'असरआ' के लिए रुदन करते थ क्योंकि अन्न को 'असरआ' के शरीर का खड माना जाता था।[१] फसल का काटना भी सवत्सर के आरभ अर्थात् मधुमास मे होता है अतएव यह भी मधुमास के 'असुर' मधु का वध है।

---

(१) Egyption Myth and Legend. P 5 (२) दुर्गासप्तशती—अध्याय २
(३) Egyption Myth and Legend P. 27

कौशिक-सूत्र में कृषि की देवी सीता अर्थात् खेत में हल द्वारा किये गये गढे की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना इस प्रकार की गयी है—'कालनेत्रे हविषो नो जुषस्व तृप्ति नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे। याभिर्देवा असुरा नकल्पयन् यातून्मनून् गन्धर्वान् राक्षसाश्च। ताभिर्नो अद्य सुमना उपा गहि सहस्रापोष सुभगे रराणा। हिरण्यस्रक्पुष्करिणी श्यामा सर्वांगशोभिनी . . .।' इस वर्णन म ऋग्वेदोक्त वाक् अथवा अदिति तथा दुर्गासप्तशती के देवी-वर्णन दोनो का ही समावेश है। अदिति रूप से आकाश, वाक् रूप से अन्तरिक्ष तथा सीता-काली वा दुर्गा रूप से पृथ्वी पर रहनेवाली देवी क्रमश आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी अथवा निखिल विश्व की मातृशक्ति है जिनसे उद्भिद, चतुष्पद तथा द्विपद सभी की उत्पत्ति है तथा जो अपनी सन्तान की रक्षा के हेतु हिंसक शक्तियो का दमन अर्थात् असुरो का सहार करती रहती है।



नवाँ अध्याय

त्रिविक्रम विष्णु

ऋग्वेद के मन्त्रो में विष्णु का नाम अपेक्षाकृत कम स्थानो में आया है इसी से उस समय विष्णु की महत्ता का ठीक-ठीक पता नही चल पाता। ऋग्वेद के मन्त्र तो सोमयज्ञ के मन्त्र हैं जिसके प्रधान देवता इन्द्र है। सभवत आर्यों की कुछ टोलियो मे विष्णु की महत्ता ऋग्वेद के अन्य देवताओ से अधिक रही हो।

ऋग्वेद मे विष्ण अपने तीन विक्रम अथवा त्रिविक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदोक्त वैष्णव-सूक्तो से उनके भौतिक रूप पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। इनमें से प्रमुख मन्त्रो का हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जा रहा है—

'विष्णु ने सात धाम अर्थात् छन्दो द्वारा पृथ्वी का अतिक्रमण करके इसे देवताओ के रक्षायोग्य बनाया। विष्णु ने इसे तीन प्रकार अथवा तीन पग में पार किया। विष्णु के पग की धूल से अन्तरिक्ष भर गया। विष्णु, जो निर्भीक गोपा अर्थात् रक्षक है, तीन पग मे ही सब को पार कर गये। तब से ही जगत में धर्म के लिए वे आधार हुए। विष्णु सभी कर्मो को देखते है। उनसे ही व्रत पूरे होते हैं। वे इन्द्र के योग्य सखा हैं। विष्णु के परम पद को विद्वान सदा देखते रहते है जैसे आकाशस्थित कोई वस्तु निरोधाभाव से सहज ही दृष्टिगोचर हो। विप्र लोग विपत्ति से बचने के लिए जागरूक होकर विष्णु के परम पद पर अग्नि मे ईंधन डालते रहते है।''[1]

विष्णु ने ही पृथ्वी तथा आकाश बनाये। तीन प्रकार चलनेवाले विष्णु ने ही तीनो लोक बनाये, जिनके तीन विक्रम में सारे भुवन तथा विश्व का क्षय हो जाता है अर्थात् विक्रान्त हो जाते हैं, उन विष्णु की शक्ति मे

---

(१) ऋ० सं० १।२२।१६-२१

ही कुचर अर्थात् कुमार्गगामी वा अत्याचारी गिरिष्ठ अर्थात् पर्वत में रहनेवाले सिंह के समान भयावह हिंसक जीव अथवा आर्यों के शत्रु भयभीत हो जाते हैं । सर्वव्यापक गिरिवत उन्नत प्रदेश में रहनेवाले अनेक प्रकार से वन्दनीय (कामनाओ को) बरसानेवाले विष्णु को हमारे शुभ कर्म एव हमारी प्रार्थना से होनेवाला बल प्राप्त हो । विष्णु ने ही तीन पगो से यह विशाल जगत रचा । विष्णु के तीनो पग मधु अर्थात् मधुर पदार्थों से परिपूर्ण हैं । इनका क्षय कभी नही होता । वे अन्न द्वारा अपने आश्रितो को शक्तिशाली बनाते हैं । एक विष्णु ने ही पृथ्वी, आकाश तथा विश्वसहित सभी भुवनोको तीन प्रकार से धारण किया । जहाँ द्योतनशील विष्णु के इच्छुक नर को तृप्ति होती है वह अन्तरिक्षस्थित विष्णु का प्रिय स्थान हमें प्राप्त हो । उरुक्रम विष्णु के इस परमपद पर मधु का भडार है । अतिशय प्रार्थनीय विष्णु का परमपद उज्ज्वल किरणों द्वारा प्रकाशित है ।[1]

इन्द्र तथा विष्णु का निवास मेघो के ऊपर है । उनके अनेक महान कर्म हैं । वे पृथ्वी के विभाग करके उसे मनुष्यो के भोग के योग्य बनाते हैं । स्वय विष्णु माता, पिता तथा पुत्र तीनो ही हैं । विष्णु एक कर्म से पृथ्वी तथा दूसरे कर्म से आकाश का अतिक्रमण करके तीसरे कर्म में मनुष्यो की दृष्टि तथा पक्षियो की उडान के बाहर हो जाते हैं । चार के साथ नव्बे अर्थात् चार गुना नव्बे अथवा ३६० स्तुतियो से अर्थात् सन्ध्यागायत्री आदि से विष्णु ही इस सवत्सर-चक्र को चलाते हैं ।[2]

विष्णु हमारा मित्र है । वह हमारे लिए सुखकारी है । उसी के प्रताप से वृष्टि होती है तथा गायो को दूध होता है । उसका यश आकाश तक विस्तृत है । वह सबका रक्षक है तथा सर्वत्र फैला है । विष्णु राध्य अर्थात् आराध्य देवता हैं । विष्णु ही आदिकाल से इस जगत में नित्य नयी विभूतियो का सृजन करते हैं । सर्वजगत को मदमत्त करनेवाली 'श्री' ही विष्णु की स्त्री है । प्रशसा विष्णु के लिए है । विष्णु को हवि आदि अर्पण होते हैं । विष्णु के अनेक जन्म हुए हैं । विष्णु के उपासक को अन्न होता है । यज्ञ तथा उदक का गर्भ विष्णु है । विष्णु का नाम जाननेवाला पुरुषार्थी मनुष्य उसकी वन्दना करते हुए महान यज्ञ का लाभ करता है । मरुतो से सेवित यज्ञरूप विष्णु की वरुण तथा अश्विनी-कुमार भी पूजा करते हैं । देवतागण तथा यजमान विष्णु के सखा हैं । विष्णु उनके लिए अह अर्थात् दिन का ज्ञान कराता है अर्थात् काल-विभाग द्वारा सृष्टि

(१) ऋ० स० १।१५४ (२) ऋ० स० १।१५५

को नियमित करता है। विष्णु उनके लिए ब्रज अर्थात् चारागाह अथवा मेघ को प्राप्त करता हैं। ज्योतिष्मान विष्णु यज्ञ में स्वय आता है। इन्द्र सरीखे यजमान के सुख तथा विजय का कारण विष्णु ही है। त्रिविक्रम विष्णु आर्यों की रक्षा करता है।[1]

अपरिमित शरीरवाले विष्णु की महिमा सर्वव्यापी है। हे विष्णु! तुम पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष ही नही, स्वर्ग को भी जानते हो। हे विष्णु! न तो तुम्हारा जन्म होता है और न तुम्हारा अवसान ही होता है। इस द्युतिमान आकाश का आधार भी तुम ही हो। पृथ्वी तथा दिशाओ के आधार भी तुम ही हो। इरावती, गोमती तथा सुन्दर द्यावा पृथ्वी के आधार विष्णु हैं। पृथ्वी के पर्वतो को धारण करनेवाले भी विष्णु हैं। इन्द्र तथा विष्णु ने यज्ञ के लिए ही इस विस्तीर्ण जगत की सृष्टि की। उन्होने सूर्य, उषा तथा अग्नि की रचना की है। उन्होने वृषशिप्र नामक दास की सेना को सग्राम में नष्ट कर दिया। इन्द्र तथा विष्णु ने मिलकर शवर नामक असुर के निन्यानवे पुरो को नष्ट कर डाला तथा शत सहस्र-सख्यक वीर दस्यु योद्धाओ को मृत्यु के पास पहुँचाया। विष्णु के साहाय्य से ही इन्द्र इतने पराक्रमी हुए।[2]

वषट्कार के साथ हवि अर्पण विष्णु के लिए ही होता है। रश्मियो से आविष्ट सूर्यरूप विष्णु हमारी हवि ग्रहण करे। हम विष्णु की स्तुति करे। विष्णु हम मनुष्यो में से धन के इच्छुक को धन देता है। विष्णु की कीर्तिया अनेक हैं। मन से विष्णु की ही पूजा करनी चाहिये। हे विष्णु! हमें सभी जनो के हित के लिए सुमति दो। हमें धन, अश्व तथा अन्न भी दो। विष्णुने पृथ्वी आदि तीनो लोको को अपनी महिमा से पार कर लिया। विष्णु ने पृथ्वी आदि तीनो लोको को मनुष्य तथा देवताओ के निवास-योग्य बनाने के हेतु उन्हें 'दशस्य' अर्थात् हिंसक राक्षसो से विमुक्त किया। विष्णु के भक्त ध्रुव अर्थात् निश्चल होते हैं। रश्मियो से युक्त दूर आकाश में रहनेवाले सूर्य ही विष्णु है पर सग्राम में यह रूप त्याग कर विष्णु कृत्रिम-रूप धारण कर के आते हैं तथा भक्तों को ही उनका यह गुप्त रूप ज्ञात होता है।[3]

ऋग्वेदोक्त विष्णु के इस वर्णन का अर्थ और्णवाभ ने यह लगाया है कि विष्णु सूर्यदेवता हैं तथा उनके तीन पग प्रात, मध्याह्न तथा संध्या हैं। परन्तु शाकपूणि ने इन तीनो पगो को पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश माना है। 'विश्' धातु से विष्णु का अर्थ जनक अर्थात् प्रजा को उत्पन्न करनेवाला हो सकता है। कुछ आधुनिक विद्वानों ने 'सानु' अर्थात् पृष्ठ शब्द से विष्णु का अर्थ ससार के 'पृष्ठ को पार करनेवाला' बताया है।[4] प्रजा उत्पन्न करनेवाले त्रिपाद 'पुरुष' नारायण विष्णु का वर्णन ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुषसूक्त में इस प्रकार है—

---

(१) ऋ० सं० १।१५६ (२) ऋ० सं० ७।९९ (३) ऋ० सं० ७।१०० (४) Mythology of All Races-India P. 29.

सहस्र शिर, चक्षु तथा पाववाला आदिपुरुष समस्त विश्व को अपनी दश उगलियो में ही समाविष्ट किये हुए था। जगत में अब तक जो कुछ हुआ है या होगा वह सब उसी पुरुष में है। देवताओ का वही स्वामी है। वही अन्न के रूप में प्रकट होता है। वह पुरुष अपनी महिमाओ से कही अधिक महान है। उसके तीन पाव ही आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी हैं। उस विराट पुरुष के पाव-रूपी ससार पुन पुन॰ बनते तथा नष्ट होते है। उस पुरुष से ही विराट उत्पन्न हुआ। उस पुरुष ने विराट को आधार बनाया। उसने अपने को देव, तिर्यक, मनुष्यादि भागो में विभक्त किया। फिर उसने इन विभागों की आधार-भूता पृथ्वी को बनाया। देवताओ के समय समय पर उस विराट को हवि अर्पण करने से वसन्त, ग्रीष्म, शरद् आदि की उत्पत्ति हुई। उसी यूपबद्ध यज्ञ-पशु के स्वरूप पुरुष से देव, साध्य तथा ऋषि उत्पन्न हुए। उस सर्वात्मक पुरुष के यज्ञ से ही ससार के सभी भोग उत्पन्न हुए। वायु तथा वन के पशु भी उसी से बने। ग्राम्य पशु भी उसीसे बने। उस यज्ञात्मक पुरुष से अथवा उस सर्वात्मक पुरुष के यज्ञ से ही अश्व, गर्दभ, गो आदि पशु उत्पन्न हुए। उस पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जघा से वैश्य तथा पैरो से शूद्र उत्पन्न हुए। उसके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र तथा अग्नि एव प्राण से वायु उत्पन्न हुए। उसके शिर से आकाश, नाभि से अन्तरिक्ष तथा पैर से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।[१]

विष्णु समस्त सृष्टि के प्रतीक होने के कारण आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी तीनो में वर्तमान है। सृष्टि के ये तीनो खड उनके तीन पग हैं। उन्होने पर्वतो को भी धारण कर रखा है तथा उनके रूप अनेक हैं। वह दस्युओ के हन्ता तथा इन्द्र के सखा है। उनके शरीर, मन, प्राण आदि से अर्थात् उनके बलिदान से, यज्ञ से वा उनके द्वारा किये गये यज्ञ से यह सारी जीव-निर्जीव सृष्टि उत्पन्न हुई।

इन वर्णनो में विष्णु के तीन पग से विश्व का नियमबद्ध होना अर्थात् बल-शाली असुर बलि का बाधा जाना स्पष्ट ही हो जाता है। इस द्यावापृथ्वी को नियमबद्ध करके ही विष्णु भूमि को अन्न तथा गो से परिपूर्ण करते हैं। कदाचित् ऋग्वेदकाल में विश्व को नियमबद्ध करनेवाले देवता सूर्य ही विष्णु थे। फिर भी विष्णु के पग से बल का उडना तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष एव आकाश तीनो में विष्णु के तीन पगो का होना समझ में नही आता। इसका एक अन्य अर्थ जो अधिक संगत जान पडता है, यजुर्वेद तथा शतपथब्राह्मण में दिया है।

(१) ऋ० स० १०।९०

यजुर्वेद में यज्ञ की प्रशंसा इस प्रकार की गयी है—'यज्ञ घृताची अर्थात् घृत उत्पन्न करनेवाला अर्थात् वृष्टिकारक है। यज्ञ करने से वृष्टि होती है। यज्ञ ध्रुव अर्थात् अनश्वर है। यज्ञ धाम मे उत्पन्न अर्थात् इस उत्तान पृथ्वी से उत्पन्न है। यज्ञ की पूजा नाम अर्थात् स्तुति से होती है। यज्ञ ऋत की योनि अर्थात् धर्म का उद्गम स्थान है। विष्णु यज्ञ की रक्षा करे। विष्णु यज्ञपति की रक्षा करे।[1] वसु, रुद्र आदित्यो के साथ यज्ञ द्यावा पृथ्वी को परिपूर्ण करता है। मित्र तथा वरुण यज्ञ से ही जल वरसाते हैं। मरुतो के साथ यज्ञ का धूम्र पृथ्वी से अन्तरिक्ष होकर आकाश मे जाता है तथा वृष्टि को ले आता है। अग्नि यज्ञ का चक्षु है। अग्नि हमारे चक्षु की रक्षा करे।'[2]

यज्ञ मे सम्बद्ध वा यज्ञ के रक्षक देवता विष्णु की यजुर्वेद मे प्रार्थना इस प्रकार की गयी है—'विष्णु ही विश्व है। विष्णु पवित्ररूप से समग्र विश्व में वर्तमान है। विष्णु अक्षय है, ध्रुव है। विष्णु पोषक है।'[3] ऐतरेयब्राह्मण (१।२३) में देवो द्वारा यज्ञ मे तीन उपसद द्वारा असुरो का पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश से हटाये जाने का वर्णन है। यज्ञ के ये तीन उपसद भी विष्णु के त्रिविक्रम हैं।

शतपथब्राह्मण मे विष्णु का यज्ञ से सम्बन्ध और भी स्पष्ट कर दिया गया है। 'अथाक्रमते। विष्णुस्त्वा क्रमतामिति यज्ञो वै व्विष्णु स देवेभ्य इमा व्विक्रान्ति व्विचक्र मे येषामिय व्विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पारायेदमन्तरिक्ष द्वितीयेन दिव मुत्तमेनैतामेवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञो विक्रान्ति विक्रमते।'—(शतपथ-ब्राह्मण १।२)। विष्णु ही यज्ञ है। यज्ञ प्रथम पद से पृथ्वी, द्वितीय मे अन्तरिक्ष तथा तृतीय से आकाश का अतिक्रमण कर लेता है अथवा प्रथम पद से पृथ्वी से अन्तरिक्ष में जाकर द्वितीय पद से आकाश में चला जाता है तथा उत्तम तृतीय पद से सारी सृष्टि को बाँध लेता है।

राजा वलि वलशाली आसुरी शक्ति के प्रतीक थे। भगवान विष्णु ने उन्हें वद्ध अर्थात् नियमवद्ध करने के हेतु वामनरूप धारण किया। पुराणों मे तो वामन का अर्थ वौना माना गया है। परन्तु यजुर्वेद में वामन रुद्र का भी एक विशेषण है जिसकी व्याख्या महर्षि दयानन्द ने इस प्रकार की है—'वाम प्रशस्त विज्ञान विद्यते यस्य।' इस अर्थ मे विज्ञान अथवा प्रज्ञा से युक्त यज्ञ ही वामन है। राजा वलि का असुरराज प्रह्लाद का पौत्र होना सभवत किसी अनार्य राजा की कहानी से सम्बद्ध है जो पीछे चलकर आर्यो के देवता विष्णु के पूजक हो

---

(१) वा० स० २।६ (२) वा० स० २।१६ (३) वा० सं० ५।२१

गये। परन्तु भागवत में वामन अवतार के जन्म का समय भी बताया हुआ है और वह इस प्रकार है। जिस समय वामन भगवान ने जन्म लिया उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर थे। भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की श्रवण नक्षत्र-वाली द्वादशी थी। अभिजित् मुहुर्त में भगवान का जन्म हुआ।[1] अभिजित् मुहूर्त पौराणिक काल में शुभ माना जाता था। नक्षत्रो की गणना महाभारत के समय 'श्रवण' से ही आरभ होती थी। 'प्रतिश्रवण पूर्वाणि नक्षत्राणि चकार य।[2] श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतव' शिशिरादय।'[3] वामन भगवान वर्ष के आरभ के सूर्य थे। विष्णुपुराण के अनुसार सूर्य विष्णु के परम अश है। वैष्णवोऽश. पर सूर्य।[4]

अथर्ववेद[5] में सूर्य को ही स्पष्ट रूप से त्रिविक्रम विष्णु कहा गया है। 'जरायुज प्रथम उस्त्रियो वृषा वातव्रजास्तनयन्नेति वृष्ट्या। सनो मृडाति तनऽ-ऋजुगो रुजन् एक मोजस्त्रेधा विचक्रमे।' आकाश से उत्पन्न जगत में सर्वप्रथम उस्त्री अर्थात् किरणोवाला, वात के समान शीघ्रगामी, वृष्टिकारी, मेघो के गर्जन से यह आदित्य तीनो लोको में अपना प्रभाव फैलाकर हमें हर्षित करे।

वेद तथा पुराणो में सम्भवत विष्णु नाम से सूर्य की ही पूजा हुई परन्तु ब्राह्मणो में विष्णु यज्ञ के अथवा यज्ञाग्नि देवता माने गये। सूर्य भी अग्नि का ही वैश्वानर रूप है अत इन दो विचारो में कोई वास्तविक भेद नही है।

---

(१) भागवत ८।१८ (२) महाभारत आदिपर्व ७१ (३) अश्वमेधपर्व ४४ (४) विष्णुपुराण २।८।५६ (५) अ० स० १।३।१।१

दसवाँ अध्याय

वराह, कूर्म तथा मत्स्य अवतार

विष्णु के अवतार अनेक हैं। इन अवतारो का बीज कदाचित ऋग्वेदोक्त यह वर्णन है कि विष्णु युद्ध मे रूप बदलकर जाते है तथा भक्तो द्वारा पूछे जाने से ही अपना नाम बताते है। 'वराह अवतार' की सबसे प्राचीन भारतीय कथा तैत्तिरीयब्राह्मण में इस प्रकार है—'पहले यह सब कुछ विकारहीन जल से परिपूर्ण था। उससे सृष्टि-निर्माण करने के हेतु प्रजापति ने तप किया। उन्होंने उस जल पर कुछ देखा। उन्होंने देखा कि वह एक कमल पुष्प का विशाल पत्र था। उन्होंने सोचा, यह तो है पर यह किस पर आधारभूत है। अपना रूप वराह का बनाकर वह जल मे डूबे। जल मे उन्होंने पृथ्वी को पाया। उसे अपने निकले हुए दातो पर रखकर जल से निकाला। कमल के उस विस्तृत पत्ते पर उस मृत्तिकापिंड को फैलाया अर्थात् उसका प्रथन किया। यही पृथ्वी का पृथिवित्व है। पृथ्वी 'भूत' हुई। यही उसका भूमित्व है।'[1]

मिस्र के 'अमरआ' अथवा ओसायरिस तथा ऋग्वेद के रुद्र दोनो ही 'वराह' कहलाये है।[2] परन्तु ऋग्वेद मे वराह विष्णु देवता का रूप न होकर विष्णु तथा इन्द्र का शत्रु है जिसपर वे प्रहार करते हैं। 'अनेक विक्रमवाले विष्णु अर्थात् व्यापनशील परमैश्वर्यशाली इन्द्र देवता दस्युओं वा हिंसाकारियों का सब कुछ हरण करके क्षीर, पाक, मिष्टान्न आदि से परिपूर्ण सैकड़ो यज्ञ करके अर्थात् सैकडो प्रकार इनसे पृथ्वी को परिपूर्ण करते हुए, हिंसाकारियो वा छल-कारियो में प्रमुख वराह अर्थात् पौधो का जड़ अथवा मूल उखाड़नेवाले किंवा जलनिरोधक वृत्र का निराकरण करते हैं।'[3]

---

(१) तै० ब्रा० १।१।३।१८–१६ (२) Egyption Myth and Legend—P 61
(३) ऋ० सं० ८।७७।१०

परन्तु ऋग्वेद में 'वराह' शब्द अन्य अर्थों में भी व्यवहृत हुआ है। 'वर अर्थात् उदक जिसका आहार है' वह मेघ अथवा घृतादिरूपी उदक भक्षण करनेवाले अग्नि दोनो को ही वराह कहा गया है। जलनिरोधक वृत्र, जो जल को हर लेता है, वराह रूप मे भी इन्द्र द्वारा निहत हुआ।[१] परन्तु अगिरस अग्निरूपी वराह ने 'गोधायस्' अर्थात् गो अथवा जल धारण करनेवाले वृत्र को विदीर्ण करके वृष्टि को पृथ्वी पर लाया अर्थात् जल से पृथ्वी का उद्धार किया।[२]

विष्णुपुराण में वराह अवतार की कथा इस प्रकार दी गयी है। ' ब्रह्मा ने सम्पूर्ण लोको को शून्यमय देखा। सम्पूर्ण जगत जल अर्थात् शून्य से परिपूर्ण था अर्थात् जगत में कुछ भी न था। भगवान ने वेद यज्ञमय वराह रूप धारण किया। भगवान धरणीधर ने घर्घर शब्द से गर्जना की। वे महावराह पृथ्वी को लेकर बाहर निकले।'[३] यह वर्णन स्पष्ट ही मेघ की वर्षा से सृष्टि के पुन उत्पन्न होने का है। वराह गरजनेवाला मेघ ही है। अथवा वराह यज्ञ की अग्नि है जिससे मेघ जल बरसाते है।

भागवत में वराह की कथा में हिरण्याक्ष दैत्य को भी लाया गया है। यही दैत्य पृथ्वी को पाताल ले गया था। वराह ने दैत्य की हत्या कर के पृथ्वी का उद्धार किया।[४] इस कथा में भी हिरण्याक्ष के दैवी उद्गम का भास मिलता है। भगवान विष्णु के प्रिय पारपद जय तथा विजय ही सनकादि मुनियो का अनादर करने के कारण हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु बन कर जनमे थे। ऋग्वेद में स्वय सूर्यदेव सविता को हिरण्याक्ष कहा गया है।[५] परन्तु ऋग्वेद में सविता बलशाली असुर भी है तथा मिस्र के सूर्यदेव 'रा' की भाति भारत मे भी सूर्य-देवता सर्वदा सृष्टि के मित्र ही नही कभी-कभी शत्रु जैसे भी दिखाई देते है। पुन इन्द्र-शत्रु वृत्र के अनुचर जलनिरोधक मेघखड, जो सूर्य की ज्योति से वा विद्युत के प्रकाश से सोने की भाति चमकते है, उनको भी ऋग्वेद मे हिरण्य से सम्बद्ध कहा गया है। 'चक्राणास परीणह पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमाना।'[६] जलनिरोधक अथवा पृथ्वी को आच्छादन करनेवाला वृत्र भी हिरण्य जैसा है जिसके विदीर्ण होने से उसका जल पृथ्वी पर बरस कर वह गया तथा पृथ्वी का उस घिरी हुई जलराशि से उद्धार हुआ। वराह-यज्ञ अथवा मेघ है। यज्ञ ही विष्णु भी है। हिरण्याक्ष ग्रीष्म में कष्ट देनेवाला सूर्य अथवा

(१) ऋ० स० १।६१।७ (२) ऋ० स० १०।६७।७ (३) वि० पु० १।४ (४) भागवत ३।१७-१८-१९ (५) ऋ० स० १।३५।८ (६) ऋ० स० १।३३।८

जलनिरोधक वा अच्छादक वृत्र है। हिरण्याक्ष वध भी अनेक दूसरी हिन्दू धार्मिक कथाओं की भांति अनावृष्टि पर वृष्टिकारक शक्तियों की विजय का ही रूपक है।

कच्छप अथवा कूर्म अवतार के अर्वाचीन रूप का सर्वप्रथम वर्णन वाल्मीकि-रामायण में है। जब देवासुरों की मथानी अर्थात् मदराचल पर्वत पाताल को चला गया, तब विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर उस पर्वत को उभार कर फिर अपनी पीठ पर रखा।[1]

शतपथब्राह्मण में निम्नलिखित वर्णन है—'चक्षुपी हवा अस्य शुक्रामथिनौ। अथ वेनश्चोदयत पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमान इति तदेतस्य रूप-कूर्मो य एष तपतीति यदाह ज्योतिर्जरायुरिति।'[2] 'उज्जवल सूर्य-चन्द्रमा अथवा शुक्र एवं चन्द्रमा ही मन्थी हैं। विद्युत् रूप से चमकनेवाला वेन कूर्म के समान निवास करता है। यह वेन आदित्य के गर्भ जल अर्थात् अन्तरिक्ष में मेघ के उदर में शयन करता है जैसे जल में कूर्म रहता है।' यों तो कूर्म का कर्म के साथ सम्बन्ध स्थापित कर के कूर्म को प्रजापति ब्रह्मा का रूप भी माना जा सकता है जो शब्द-समानता से कच्छप तथा कश्यप भी हो गया। परन्तु प्राचीन देशों की जलमयी भुवन-मस्या में जलजन्तु कच्छप का स्थान होना स्वाभाविक था। चीनी 'ताओ' धर्म में पुण्यात्माओं के निवास के हेतु ईश्वर के बनाये पांच द्वीपों की कल्पना है। पहले यह समुद्र पर ज्वार-भाटा के साथ हिलते रहते थे जिससे द्वीपों पर रहनेवालों को कष्ट होता था। उनका दुःख देखकर परमेश्वर ने प्रत्येक द्वीप को उठा रखने के हेतु तीन-तीन महान कछुओं को सलग्न किया।

जापान के ब्रह्मा का रूप कछुए जैसा है। उनके ऊपर विश्ववृक्ष आधार-भूत है तथा उस वृक्ष के ऊपर एक चतुर्मुख देवता बैठते हैं। चीन में कछुए को ईश्वर का चिह्न मानते हैं। कछुए की हड्डी राजकीय चिह्नों में व्यवहृत होती थी।[3] छोटानागपुर की आदिम जातियों में कई एक का धार्मिक चिह्न कछुआ है तथा वे कछुए का मांस नहीं खाते।

चीन की जगज्जननी 'सिवाग मू' के चार पारषद क्रमश नीलवर्ण सारस, श्वेतवर्ण व्याघ्र, मृग तथा कच्छप हैं जो चारों ही चीन में देवताओं के रूप माने जाते थे। जब चीन का राजा 'याओ' बहुत दिनों तक राज्य कर चुका

(1) बालकाण्ड ४५ (2) श० ब्रा० ४।२।१ (3) Myths of China and Japan —P 111, 112, 140, 280.

था तब एक कछुए ने जल से निकल कर उसे अपने पुत्र 'शुन' को राज्य दे देने का सन्देश दिया।[१] जापान की 'आइनु' जाति के दो प्रधान देवता थे, समुद्र विशाल कच्छप तथा पृथ्वी पर उलूक। भारतीय ज्योतिष के ग्रन्थो में नक्षत्रो के चक्र को कूर्म कहते है। पाश्चात्य विद्वान हेविट ने अपने ग्रन्थ--'रूलिंग रेसेस आफ प्रिहिस्टोरिक टाइम्स'--में बताया है कि प्राचीन जातियो द्वारा पृथ्वी का कल्पित रूप कछुए की पीठ जैसा माना जाता था।

समुद्र-मन्थन की कल्पना के साथ प्राचीन जातियो के जलदेव कच्छप की कल्पना स्वाभाविक थी तथा ऋग्वेद मे विष्णु को ही अनेको रूप धारण करनेवाला बताया गया है अत भारतीय धार्मिक कथाओ मे यह कच्छप विष्णु का ही अवतार बना। कदाचित इसमे ब्राह्मणग्रन्थो में वर्णित सृष्टि-क्रम की कथाओ से भी पुष्टि मिली।

कूर्म की भाति मत्स्य भी जल का जन्तु है तथा जल अर्थात् नार मे शयन करनेवाले नारायण के मत्स्य रूप की कल्पना भी स्वाभाविक रूप से ही आयी। इस कथा में भगवान विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण कर राजर्षि सत्यव्रत को आनेवाले प्रलय से सावधान किया था तथा प्रलय आने पर उन्हें बचाया था। यही सत्यव्रत वैवस्वत मनु हुए। इस कथा मे सबसे विचित्र बात यह है कि यह दैवी मत्स्य आरभ में अत्यन्त छोटा था तथा इसने मनु से बडी मछलियो तथा जल-जन्तुओ से रक्षा की प्रार्थना की। फिर यह मत्स्य बढता गया तथा अन्त में समुद्र मे तिरोहित हो गया। परन्तु महाप्रलय आने पर पुन प्रकट होकर मनु की रक्षा की। इस कथा का आरभ सुमेर की यूफ्रेट्स नदी के तट पर स्थित एरिडू नगर के 'या' देवता से माना जाता है।[२] एरिडू के 'या' देवता का रूप मछली-जैसा था। एरिडू मे यूफ्रेट्स नदी की भी पूजा होती थी तथा वास्तव में मत्स्याकार 'या' देवता नदी के ही प्रतीक थे। वर्षाऋतु में यूफ्रेट्स का बढना ही 'या' मत्स्य का बढना था। यूफ्रेट्स नदी की उपजाऊ मिट्टी, नदी का जल, जिससे सिंचाई के नाले भरते थे, नदी मे छोटी नावो को बनाकर फिर बडी नावो तथा समुद्र मे जानेवाले जहाजो का बनाना, इन सभी प्रकारो से यूफ्रेट्स नदी के 'या' देवता ने ही एरिडू के निवासियो को प्रकृति पर अधिकार पाना सिखाया।

---

(१) Myths of China and Japan.—P. 280

(२) Myths of Babylon and Assyria.—P. 27, 28, 29

'मत्स्य' को मिस्र में पवित्र मानते थे। यह पुरुष के जननेन्द्रिय का प्रतीक माना जाता था। माता 'आइसिस' की अनेक मूर्तियों में इन देवी के सिर पर विश्व के पिताशक्ति का प्रतीक एक मत्स्य रखा हुआ है। प्राचीन मिस्र में मंदिरों के पुजारी मछली नहीं खा सकते थे।

जैसा कहा जा चुका है, ऋग्वेद में इन्द्र को भी जल में रहनेवाला महा-मत्स्य कहा गया है। कालान्तर से अनेक रूपधारी विष्णु ही 'मत्स्य' अवतार के देवता माने गये।

ग्यारहवाँ अध्याय

चतुर्भुज विष्णु तथा उनके पारषद

शतपथब्राह्मण के द्वितीय अध्याय पचम ब्राह्मण में यज्ञरूप विष्णु का विस्तारपूर्वक इतिहास दिया गया है । देवता तथा असुर दोनो ही प्रजापति के पुत्र थे । उनमें परस्पर स्पर्धा थी । असुरो का बल बहुत बढ गया था तथा वह सारे जगत को अपना समझने लगे । देवता उनके पास पृथ्वी में अपने भाग के लिए यज्ञात्मक विष्णु को साथ लेकर गये । विष्णु वामन थे । असुरो ने देवताओ को उतनी ही पृथ्वी दी जितने में वामन लेट सकें । देवताओ ने प्राची दिशा से यज्ञात्मक विष्णु को भूमि में डालकर दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर से गायत्री आदि छंन्दो द्वारा उनकी वन्दना करते हुए समस्त पृथ्वी को प्राप्त कर लिया । जैसी यज्ञवेदी है वैसी ही पृथ्वी है । वेदी के पूर्व में देवता, दक्षिण में पितर, पश्चिम में मनुष्य तथा उत्तर में रुद्र रहते है। वेदी की भुजाओ के ही खड ऋतु, मास, आदि हैं ।

ऐतरेयब्राह्मण में यज्ञ की अग्नि को ही विष्णु कहा गया है । 'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णु परम । तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता ।'[1] ऋग्वेद में अग्नि के चार शृग कहे गये है जिनका अर्थ चार दिशाएँ अथवा चार वेद माना जाता है ।[2] इन्द्र का वज्र भी चतुष्कोण वा चतुर्भुज ही था ।[3]

यजुर्वेद में विष्णु को ध्रुव अर्थात् अनश्वर एव आकाश की ध्रुवा दिशा का रक्षक माना गया । 'विष्णो रराटमसि विष्णो श्नप्त्रेस्थो विष्णो स्यूरसि विष्णो ध्रुवसि'—(य०वे० ५।२१) । 'विष्णु निखिल विश्व है, विष्णु पवित्र है, पालन करने-वाले हैं, फैले हुए हैं तथा ध्रुव है ।' अथर्ववेद में विष्णु को ध्रुवा दिशा अर्थात् खगोल के उत्तर ध्रुव का अधिपति माना गया है । 'ध्रुवादिग् विष्णुरधिपति

---

(१) ऐ० ब्रा० १।१ (२) ऋ० स० ४।५८।१, श० ब्रा० २।३ (३) श० ब्रा० २।४

कल्मापग्रीवो रक्षिता वीरुध इपव ।'[1] ध्रुवा दिशा के विष्णु अधिपति हैं । कल्मापग्रीव अर्थात् कृष्ण वा नीलवर्ण कंठ हो जिसका वैसे रुद्र वा सर्प से यह दिशा रक्षित है तथा विरोहणशील ओपधियाँ इस दिशा के आयुध वा अस्त्र हैं ।

विष्णु के चार हाथो में प्रसिद्ध शख, चक्र, गदा तथा पद्म ये चार आयुध माने गये हैं । हिन्दूधर्म के इतिहास में ठीक-ठीक किस समय इस चतुर्भुजी मूर्ति की पूजा आरभ हुई यह बताना कठिन है। शख को अथर्ववेद में सूर्य का रूप तथा शंख के शब्द को राक्षसो को नष्ट करनेवाला माना गया है । 'वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिपस्परि । मन नो हिरण्यजा शख कृशन· पात्वंहम । यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधिजज्ञिपे । शखेन हत्वा रक्षास्यत्रिणो (रक्षांस्यि-त्रिणो) विपहामहे । समुद्राज्जातो मणिर्वृत्रा ज्जातो दिवाकर· सो अस्मान्सर्वत· पातुहेत्यादेवासुरेभ्य· ।'[2] हे शख ! जो वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत्, तारासमूह तथा सूर्य से उत्पन्न हुआ है हमारा शासन कर तथा पाप से हमें बचा । हे शख ! तू समुद्र से नक्षत्रादि के पहले उत्पन्न हुआ है । तुझमे राक्षसो की हत्या करके हिंसक वा मनुष्यभक्षी पिशाचादि का हम भलीभाति प्रतिकार करेंगे । समुद्र से शंखरूपी मणि उसी प्रकार निकलता है जैसे मेघमंडली से सूर्य । ये दोनो अर्थात् सूर्य तथा शख हमारी तथा असुरों की हत्या करनेवाले देवताओ की सब प्रकार मे रक्षा करे ।

विष्णु के हाथ में पद्म का होना कदाचित् सृष्टि के आरंभ में जलराशि के ऊपर पद्मपुष्प के पत्ते के होने से सम्बन्ध रखता है । वराह अवतार के सम्बन्ध में तैत्तरीयब्राह्मण का यह वर्णन पहले आ चुका है । पद्मपुष्प मिस्र में 'हा-थोर' नामक मातृदेवी का रूप था जिसमें से काल-विभाग द्वारा विश्व का शासन करनेवाले 'होरस' देवता निकले थे । चीन में 'हो मिनकु' तथा जापान में 'कामेनको' नाम की मातृदेवियाँ भी हाथ में कमलपुष्प धारण किये रहती थीं । चीन में मातृरूपी विश्व को कमलपुष्प जैसा माना जाता था । चीनी जगज्जननी का दूसरा रूप हाथ में फलो की टोकरी लिये हुए स्त्री का था । मिस्र की चित्रमयी भापा में फलो की टोकरी को स्त्री, माता वा देवी का चिह्न माना जाता था । डानेल्ड मैकेन्जी के अनुसार प्राचीन देशो में कौडी तथा सीप को भी जनशक्ति का रूप मानते थे ।[3] शख तथा पद्म दोनो ही मातृशक्ति अर्थात् सृजन तथा पालनशक्ति के प्रतीक बनकर ही विष्णु के आयुध हुए।

---

(१) अ० वे० मं० ३।६।२५ (२) अ० मं० ४।१०।१, २, ५ (३) Myths of China and Japan. P 171-2, 303

गदा स्पष्ट ही दुष्टो के हनन का साधन था । गदा राजकीय चिह्न भी था । अतएव इसका विष्णु का आयुध होना स्वाभाविक ही था ।

ऋग्वेद में सवत्सर को द्वादश प्रधियोवाला चक्र कहा गया है ।[१] यह चक्र वृत्ताकार था अथवा किसी अन्य आकार का, यह कहना कठिन है । भारतीय ज्योतिष का राशिचक्र चतुर्भुजाकार बनता है पर उसमें बारह राशियो के बारह खड रहते हैं । तान्त्रिक राहुचक्र तथा अन्य चक्र भी वृत्ताकार न होकर अन्य आकारो के होते हैं । ऋग्वेद में इन्द्र को पृथ्वीरूपी चक्र की धुरी को धारण करने वाला बताया गया है ।[२] परन्तु पृथ्वी को ऋग्वेद में ही अन्य स्थान पर चतुर्भृष्टि अर्थात् चतुर्भुज माना गया है ।[३] आर्यों का चतुर्भुज स्वस्तिक चिह्न 卐[४] आकाश तथा पृथ्वी का अथवा समस्त भुवन का प्रतीक था । अनेक प्राचीन जातियाँ इस चिह्न को 'सृष्टि' का चिह्न मानकर पूजती थी ।[४] इन्द्र का वज्र भी चार किनारो का चक्र था ।[५] शतपथब्राह्मण के चतुर्दश काण्ड में सूर्य को चतुर्भुज चक्र कहा गया है । स्पष्टत विष्णु का सुदर्शन-चक्र निखिल विश्व, द्यावापृथ्वी, सवत्सर अथवा सूर्य है । विश्व, सवत्सर वा सूर्य का प्रतीक होकर ही 'चक्र' यथेष्ट महत्ता रखता है । परन्तु प्राचीन जगत में चक्र की पूजा तथा चक्र को सर्वप्रधान देवता का आयुध एक और कारण से माना गया है ।

कुलाल चक्र अर्थात कुम्हार के चाक का आविष्कार ईसवी सन् के लगभग ३००० वर्ष पूर्व मिस्र में हुआ। तब से ही यह देवताओ का दान माना जाने लगा । मिस्र में कुम्हार का चाक वहा के 'प्टा' देवता का चिह्न हुआ जो मिस्री धर्म के विश्वकर्मा थे । मिस्र से यह आविष्कार चीन तथा भारत को प्राप्त हुआ तथा दोनो ही देशो में इसे धार्मिक चिह्न माना गया । मिस्र के 'महादेव' 'असरआ' अथवा 'ओसायरिस' में मिस्र के सभी देवताओ के गुण मिला दिये गये थे । अत वे भी चक्रधारी कुम्भकार माने गये । असीरिआ के प्रधान देवता 'असुर' वा 'अशुर' के चिह्न धनुष, चक्र तथा पक्षी थे। भारतीय रुद्र का चिह्न धनुष तथा विष्णु का चिह्न चक्र है । विष्णु का वाहन भी पक्षी गरुड ही है ।[६]

विष्णु के आभूषण कौस्तुममणि तथा मकराकृत कुंडल हैं । मकर राजा वरुण का वाहन है तथा अदिति को ऋग्वेद में कुंडलाकार कहा गया है । मिस्र देश के प्राचीन राजा गले में नीलवर्ण के मणि पहनते थे ।

---

(१) ऋ०स०१।१६४।४८ (२) ऋ०सं०१०।८९।४ (३) ऋ०म०१०।५८।३ (४) Early Astronomy and Cosmology P 156 (५) ऋ० स० ४।२२।२ (६) Myths of China and Japan-Chapter II, Myths of Babylonia and Assyria-Chapter XIV

विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु के पारषदों में प्रमुख स्थान ध्रुव का है। जैसा पहले कहा जा चुका है, विष्णु को ध्रुवा दिशा का अधिपति अर्थात् आकाश के ध्रुवभाग का अधिपति कहा गया है। यजुर्वेद[1] में विष्णु द्वारा रक्षित यज्ञ को ही ध्रुव कहा गया है। यज्ञ 'धाम' से अर्थात् स्थान से उत्पन्न होता है। 'धाम' स्थान या लोक फैला हुआ अर्थात् उत्तान है। पृथ्वी विश्व का अधोभाग अर्थात् पद है। ऋग्वेदोक्त सृष्टि-क्रम में[2] उत्तानपद के रूप में ही पृथ्वीवृक्ष उत्पन्न हुआ था। उत्तानपद अथवा यज्ञपुरुष उत्तानपाद का पुत्र यज्ञ ही ध्रुव है। ध्रुव की माता सुनीति थी। ऋग्वेद[3] में असुनीति को प्राण या मन कहा गया है। जो असुओं को ले जाय वह असुनीति है। असुनीति का कालान्तर से सुनीति हो जाना असम्भव नहीं। उत्तानपाद की दूसरी स्त्री अर्थात् ध्रुव की विमाता सुरुचि थी।[4] उत्तम भोग राग ही सुरुचि के पुत्र थे। उत्तानपाद-रूपी यजमान की सुरुचि अर्थात् रुचिकारक उत्तम भोगों में अधिक आसक्ति थी। सुनीति उन्हें यज्ञ की ओर ले जाती थी। यजमान ने उत्तम राजभोग से प्रेम किया तथा यज्ञ की अवहेलना की। फिर भी सप्तर्षियों अर्थात् सात वेद-प्रसिद्ध पुजारियों अथवा सात सद्गुणों अथवा सप्तर्षि नामक सात ताराओं की कृपा से यज्ञ की रक्षा हुई अर्थात् यज्ञ अनश्वर अर्थात् ध्रुव हुआ। ध्रुव तारा अनश्वर अचल यज्ञ का ही प्रतीक है।

चतुर्भुज विष्णु ध्रुवा दिशा के रक्षक हैं तथा क्षीरसागर में शयन करते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, सागर का अर्थ प्राचीन काल में आकाश भी था। क्षीर का अर्थ दूध भी है। रजत-पथ 'मिल्की वे' अथवा आकाशगंगा रूपी दूध के समान श्वेतवर्ण पथ खगोल के उत्तर ध्रुव के समीप से आरम्भ करके सम्पूर्ण खगोल के चतुर्दिक मंडलाकार बना हुआ है। यही विष्णु का क्षीरसागर है।

विष्णु अनन्त शेषनाग पर शयन करते हैं। खगोल के उत्तर ध्रुव को घेर कर पाश्चात्य ड्राको नामक मंडल है। यह ध्रुव के लगभग चारों ओर है अतः मंडल का कोई न कोई भाग सदा क्षितिज के ऊपर रहता है। अतएव यह अनन्त है। ड्राको शब्द का अर्थ भी विशाल सर्प होता है। यही विष्णु का आधार शेषनाग है। ध्रुव के अत्यन्त समीप लघुऋक्ष 'उरसा माइनर' या भारतीय शिशुमार तारामंडल है। ध्रुव तारा शिशुमार के ही पुच्छ में है। शिशुमार जलजन्तु-विशेष वरुण के वाहन मकर के समान है। यही विष्णु का मकराकृत कुंडल है। शिशुमार-चक्र का वर्णन विष्णुपुराण में इस प्रकार है—

---

(१) य० अ० २।६ (२) ऋ० म० १०.७२ (३) ऋ० म० १०।५९।५, ६ (४) वि० पु० १।११

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो । दिविरूप हरेर्यन्तु तस्य पुच्छेस्थितो ध्रुव ।--(२।६)। आकाश में भगवान विष्णु का जो शिशुमार के समान आकार-वाला तारामय स्वरूप देखा जाता है उसके पुच्छ भाग में ध्रुव है ।

श्रीमद्भागवत में शिशुमार तथा शेषनाग वा अनन्त नामक तारामडलो का निम्नलिखित वर्णन है—'योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णा के द्वारा जब ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करता है तब पहिले आकाशमार्ग से वैश्वानर अग्नि से होकर जाता है जहाँ उसके बचे-खुचे मल भी जल जाते हैं । इसके पश्चात वह वहाँ से ऊपर भगवान श्रीहरि के शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्र पर पहुँचता है । भगवान विष्णु का यह शिशुमार-चक्र विश्वब्रह्माण्ड के भ्रमण का केन्द्र है । उसका अतिक्रमण करके अत्यन्त सूक्ष्म एव निर्मल शरीर से अकेला ही महर्लोक में जाता है । जब प्रलय का समय आता है तव नीचे के लोकों को शेष के मुख से निकली हुई अग्नि में भस्म होते देखकर ब्रह्मलोक में चला जाता है ।'[1]

भागवत में ही अन्यत्र ध्रुव को प्रजापति शिशुमार की पुत्री भ्रमी का पति बताया गया है । शिशुमार तारामडल में ही ध्रुव तारा है तथा यह नक्षत्रिय खगोल के चतुर्दिक भ्रमण करता हुआ दिवस, वत्सर, कल्प आदि काल विभाग उत्पन्न करता है । भागवत मे ध्रुव के पुत्रो के नाम कल्प तथा वत्सर बताये गये हैं ।[2] दिव्य विमान पर बैठकर ध्रुव त्रिलोकी को पार कर सप्तर्षि-मडल से भी ऊपर भगवान विष्णु के परमधाम में पहुँचे । इस प्रकार उन्होंने अविचल गति प्राप्त की ।[3] जिस प्रकार कोल्हू के चारो ओर बैल घूमते हैं वैसे ही यह ज्योतिश्चक्र ध्रुव के चतुर्दिक घूमता है ।[4]

शिशुमार-चक्र अथवा पाश्चात्य 'उरसा माइनर' तारामडल में ही जो ध्रुव से कम प्रकाश के दो तारे 'बीटा' तथा 'गामा उरसा माइनरिस' हैं वे भारतीय ज्योतिष में जय तथा विजय के नाम से विख्यात हैं । सहस्रो वर्ष पूर्व खगोल का उत्तर ध्रुव इनके ही समीप था । अब भी यह ध्रुव के निकट ही है । भागवत में कही हुई कथा के अनुसार यही दोनो सनकादि मुनियो के शाप से हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु दैत्य हुए । हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु दोनो ही स्पष्टत सूर्य के ही नाम हैं जो पीछे चलकर सूर्य की आसुरीवृत्ति के द्योतक हुए । परन्तु उत्तर आकाश मे ही एक मडल है जिसका पाश्चात्य नाम 'काश्य-पीय'[5] है । हिरण्याक्ष कश्यप प्रजापति के ही पुत्र थे । हिरण्याक्ष का वध

---

(१) भागवत २।२।२४–२६ (२) भागवत ४।१०।१ (३) भागवत ४।१२।३५ (४) भागवत ४।१२।३६ (५) Cassiopeia

वराहरूपी विष्णु ने किया था। उत्तर आकाश में वराहाकार परशु[1] मडल काश्यपीय के समीप ही है। यह सभी मडल तथा भारतीय ज्योतिष का ब्रह्मामडल[2] भी क्षीरसागर 'रजत पथ' के समीप ही हैं। सृष्टि के आरभ तथा वृद्धि की पौराणिक कथाओं का उत्तर आकाश के तारामडल तथा रजत पथ के परस्पर स्थान से बडा ही घना सम्बन्ध जान पडता है।

विष्णु ने भागवत के अनुसार हिरण्यकशिपु का वध करने के हेतु सिंह का रूप धारण किया था। ब्राह्मणो मे विष्णु को 'नरसिंह' अर्थात् मनुष्यों में सिंह कहा गया है। ऋग्वेद मे अग्नि को भी सिंह के समान गरजनेवाला कहा गया है। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद कदाचित ईरान के पुण्यात्मा शासक 'परधात' अथवा 'पेशदात' थे। इनका पूरा नाम हाओश्याग परधात था। यह 'फ़वाक' के पुत्र तथा 'स्याकमाक' के पौत्र थे। इनके नाम 'हाओश्याग' का अर्थ होता है 'पुण्यात्माओ के राजा'। इन्होंने पूजा-अर्चा से ईश्वर को प्रसन्न कर लिया था। 'अर्द्वी सुरा अनाहिता' अर्थात् जलधाराओ की देवी उनके वश मे थी। अहुर मज़दा अर्थात् वरुण के 'देवों' को परधात के प्रताप का बडा भय था।[3]

चतुर्भुज विष्णु का वाहन गरुड पक्षी है। ऋग्वेद[4] में सूर्य को सुपर्ण अर्थात् सुन्दर पखोवाला तथा गरुत्मान अर्थात् वेगवान किंवा वदना मे वढनेवाला कहा गया है। सूर्य, इन्द्र तथा विष्णु तीनो को ही स्थान-स्थान पर 'श्येन' अर्थात् बाज पक्षी के समान आकाशचारी कहा गया है। सुमेर में गरुड के समान आकाशचारी जू पक्षी की पूजा होती थी। गरुड जैसे वेदो को लेकर उड गये थे वैसे ही जू पक्षी सुमेर के 'सृष्टि के प्रस्तर-लेख' (टैबलेट्स आफ क्रिएशन) को लेकर उड गया था। महाभारत की कथा के अनुसार एक बार इन्द्र तथा गरुड में युद्ध हुआ था। सुमेर मे भी तड़ित् के देवता 'रम्मन' ने 'जू' से युद्ध किया था। डॉनाल्ड मैकेन्जी[5] के अनुसार जू पक्षी अरब की मरुभूमि से आनेवाला झझावत है तथा रम्मन वृष्टि के देवता है। बैबीलोन मे हयशिरा[6] तारामडल अथवा वृषराशि को जू पक्षी मानते थे। परन्तु अरब मे पाश्चात्य सिग्नस अर्थात् हस तारामडल को ही जू पक्षी अथवा रुख पक्षी का रूप मानते थे।[7] सिग्नस मडल उत्तर आकाश मे आकाशगगा के समीप है तथा सभवत यही विष्णु के वाहन गरुड का रूप माना गया। पवित्र वैष्णव नक्षत्र अभिजित् इसी तारा-

---

(१) Persens (२) Auriga (३) Mythology of All Races-Iran Page 299-300 (४) ऋ० स० १।१६४।४६ (५) Myths of Babylonia and Assyria P. 74-75 (६) Pegarus (७) R H. Allen-LStar Nawas

मण्डल मे है । वाल्मीकिय रामायण में वर्णित अश्वमेधयज्ञ में यज्ञ की वेदी के समीप गरुड पक्षी की मूर्ति का बनना आवश्यक था ।[१]

ऋग्वेद मे अग्नि इत्यादि सभी देवता रा अथवा राधस् किंवा रेवत् रूपी धन-धान्य के स्रष्टा हैं । पुराणो मे धनधान्य की देवी लक्ष्मी विष्णु की स्त्री मानी गयी । बाली द्वीप में 'देवीश्री' को धान के खेत की देवी मानकर पूजा जाता है ।[२] अदिति तथा देवी दुर्गा के वर्णन में ससार की अनेक मातृदेवियो का वर्णन किया जा चुका है। अग्नि तथा सूर्य यजुर्वेद में रूक्म अर्थात् रुचिकर 'श्री' को प्रकाशित करनेवाले अथवा दिखलानेवाले कहे गये हैं । 'दृशानो रुक्म उर्व्याव्यद्यौत् दुर्षमायु श्रिये रुचान । अग्नि रमृतो अभवद्वयो भिर्यदेव द्यौरजनयत्सुरेता । नक्तोषासा समनसा विरूपे धपयेते शिशुमेक समीचीं द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदा'—(यजुर्वेद १२।१) । दर्शनीय अग्नि उर्वरा भूमि की रुचिकर 'श्री' को प्रकाशित करता है। अग्नि ही आकाश को सुन्दर जलवाला बनाकर हमारे लिए रुचिकर सुन्दर 'श्री' अन्न उत्पन्न करता है । बालरवि रुचिकर शस्य को सुन्दर प्रकाश से प्रकाशित करता है । वही बालरवि अग्नि को धारण करनेवाला है । कृष्णपत्नी रुक्मिणी तथा कृष्ण की राधा एव श्री सभी विष्णु की विभूति प्रकृति के ही नाम है ।

लक्ष्मी समुद्र से उत्पन्न हुई थी । प्राचीन सुमेर में लोग नदी द्वारा लायी गयी मिट्टी से स्थल की उत्पत्ति देखकर जल अथवा समुद्र से ही पृथ्वी की उत्पत्ति मानते थे ।[३] यजुर्वेद में पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना इस प्रकार है—'ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा मा त्वा समुद्र उद् वधीन्मा सुपर्णो अव्ययमाना पृथ्वी दृह । प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपा पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वती प्रथस्वती प्रथस्व पृथिव्यसि'—(य० वे० १३।१६–१७) । हे निष्कम्पा ध्रुवा, धारण करनेवाली धरुणा, विश्वकर्मा द्वारा आस्तृता अर्थात् अलकृता, समुद्र तुम्हें कष्ट न देवे तथा 'सुपर्ण' सूर्य तुम्हें व्यथा न पहुँचाये । हे देवी ! इस पृथ्वी को शस्यपूर्ण बना । प्रजापति, जल के प्राप्तिस्थान समुद्र के पृष्ठ पर तुम्हें स्थिर रूप से रखे । तुम व्यचस्वती अर्थात् अनेक वचनो अथवा अनेक प्रकार के शब्दोवाली हो । तुम प्रथस्वती अर्थात् दूर तक फैले हुए यशवाली हो । तुम्हारे यश का विस्तार हो । यह विस्तृत पृथ्वी तुम्ही हो ।

'भूरसि भूमिरसि अदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवी

(१) वा० रामायण १।१४।२६ (२) Bali–W Van Hoeve, The Hague, Netherlands–P 27 (३) Early Astronomy and Cosmology—P 24

यच्छ पृथिवी दृंह पृथिवीमाहिंसी.'—(य० वे० १३।१८) । तुम भूलोक हो, भूमि हो, अदिति हो, विश्व का पालन करनेवाली हो, भुवन विश्व को धारण करने वाली हो । पृथ्वी को ग्रहण करो, पृथ्वी को शस्यपूर्णा बनाओ । पृथ्वी की हिंसा न करो । चतुर्भुज विष्णु अर्थात् यज्ञ, भूमि का स्वामी है । यह शस्य-श्यामला पृथ्वी ही विष्णु की स्त्री लक्ष्मी है ।

—— o ——

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा प्रजापति तथा उनका वंश

ऋग्वेद में यो तो ब्रह्मन् का अर्थ वेदमन्त्र है परन्तु दशम मडल में विश्वकर्मा, प्रजापति तथा ब्रह्मन् नाम के देवताओं की वन्दना इस प्रकार की गयी है—

विश्वकर्मा ने होता बनकर विश्व के भुवनों का आवाहन किया। विश्वकर्मा के पिता कोई नही थे अर्थात् वह स्वयभू थे। उन्होने ही स्वस्तिवाचन के साथ सर्वप्रथम अग्नि को उत्पन्न किया।

पृथ्वी तथा आकाश की सृष्टि किस आधार पर हुई तथा किस वस्तु से हुई ? किस वस्तु से विश्वकर्मा ने भूमि को उत्पन्न किया तथा आकाश को विस्तृत किया ? विश्वचक्षु, विश्वमुख तथा विश्वबाहु देव वही एक है जो बाहुओ से आकाश की गति नियमित करता है तथा अपने गमनशील पाँवो से पृथ्वी को नियमबद्ध करता है।

कौन वह वन है तथा उसमें कौन ऐसा वृक्ष है जिसकी लकडी से आकाश तथा पृथ्वी-रूपी प्रासाद का निर्माण हुआ। हे जिज्ञासु मनीषियो! ब्रह्म ही वह वन तथा वृक्ष है तथा उसी से सृष्टि का निर्माण हुआ।

हे विश्वकर्मा! तुम्हारे ये तीनो उत्तम, मध्यम तथा अधम धाम है। हमें सत्पथ की शिक्षा दो। स्वय अपने यज्ञ से इन लोको की वृद्धि करो। हे विश्वकर्मा! तुम हवि द्वारा वर्धमान हो। द्यावापृथिवी तुम्हारे कारण ही पूजनीय है। तुम विश्वशभू अर्थात् विश्व के कल्याणकारी तथा साधुकर्मा अर्थात् अच्छे कर्म करनेवाले हो—(मडल १० सूक्त ८१ विश्वकर्मा)

इन्द्रियो के पिता विश्वकर्मा ने मनन किया। उनके मनन करने से ही घृत अर्थात् जल हुआ। जल में ही आकाश तथा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। विविध कर्मवाले, सर्वव्यापी, महान, धाता, विधाता, सर्वद्रष्टा, सप्तर्षियो से भी परे, एकमात्र देवता वे ही है। वे ही हमारे पालन करनेवाले तथा हमे उत्पन्न करनेवाले हैं। वे ही विधाता देवताओ के निवासस्थानों को जाननेवाले हैं। वे भिन्न-भिन्न नाम धारण करके भिन्न-भिन्न देवताओं का कार्य करते है। उसी प्रश्न देव, क देव, अथवा अज्ञात देव में यह सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ऋषिगण विश्वकर्मा के लिए ही यज्ञ करते हैं अथवा तारे उसी विश्वकर्मा के आदर में चमकते हैं (ऋक्ष-तारा-ऋषि)। चल तथा अचल जगत में एक उसी की विभूति फैली हुई है। यह ईश्वरतत्व आकाश से परे, पृथ्वी से परे, देवो से परे तथा असुरो से भी परे है। सर्वप्रथम जल मे गर्भ की भाति इसी ने समस्त सृष्टि को धारण किया था। इस गर्भ मे इन्द्रादि देवताओं ने सर्वप्रथम एक दूसरे को देखा था अर्थात् इसी मूलतत्व में भिन्न-भिन्न देवताओ का पृथक व्यक्तित्व छिपा था। इस गर्भ मे सर्वप्रथम केवल जल था। उसी जल मे सारी सृष्टि छिपी थी। उस जल मे ही ब्रह्म का निवास था। उसकी नाभि अर्थात् मध्यभाग में ही अण्डे के समान यह द्यावापृथ्वी उत्पन्न हुई जिसमे क्रमश देवता आदि उत्पन्न हुए। इस द्यावा-पृथ्वी मे ब्रह्म का अस्तित्व स्पष्ट नही दिखाई देता जैसे यह कुहासे मे ढका हो। वास्तव में यही विश्वकर्मा एक ईश्वर है।—(मडल १० सूक्त ८२)

आरभ में केवल हिरण्यगर्भ थे जो सभी भूतो के पतिरूप से उत्पन्न हुए थे। उन्होने पृथ्वी तथा आकाश को स्थिर करके धारण किया। हम किस देवता अथवा क नामधारी अनिर्वचनीय प्रजापति के लिए हवि प्रदान करें।

जो प्राण तथा बल के देनेवाले हैं। जिनका ससार है। जिनकी आज्ञा को सभी देवता मानते है। जिनकी छाया मृत्यु है तथा जिनकी ज्योति अमरत्व है। हम क देवता के लिए हवि प्रदान करे।

जो अपनी महिमा से जीव तथा निर्जीव जगत के एकमात्र स्वामी है। जो द्विपद तथा चतुष्पद दोनो के ही स्वामी है। हम उन्ही क देवता के लिए हवि प्रदान करें। —(मडल १० सूक्त १२१ क देव प्रजापति)

उसकी महिमा के अधीन ही यह हिमवान पर्वत है। यह जलपूर्ण समुद्र उसी का है। जिसकी ये चारो दिशाएँ बाहु है तथा जिसकी चारो प्रदिशाएँ भी है, हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

जिसके द्वारा यह उग्र आकाश तथा पृथ्वी भी अपने-अपने स्थान पर दृढ़ हैं। जो स्वर्लोक तथा सूर्य का आधार है। जो अन्तरिक्ष से बडा है। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करें।

जिसके भय से क्रन्दसी अर्थात् द्यावापृथ्वी अथवा आकाश तथा पृथिवी मन ही मन कापते हे, जब उनके ऊपर सूर्य का प्रकाश पडता है। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

जब वृहती जलराशि के गर्भ से अग्नि उत्पन्न हुई तब वही देवताओ का प्राण हुआ। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

जिसने अपनी महिमा से उस अपार जलराशि को देखा। उस जलराशि में दक्ष अर्थात् उत्पादन-सामर्थ्य था। उसी जलराशि से यज्ञ उत्पन्न हुआ। जो देवताओ का अधिदेव है। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

पृथ्वी का जनक वह हमारी हिंसा न करे। जिस सत्यधर्मा ने आकाश को भी उत्पन्न किया। जिसने वृहती तथा चन्द्रा अर्थात् स्वच्छ जलराशि को उत्पन्न किया हम उसी क॰ देव के लिए हवि अर्पण करे।

हे प्रजापति, तू ही एक इस समस्त सृष्टि को जानता है। हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर तू हमारी कामना पूरी कर। हम धनो के पति हो।

उस समय न सत् (होना) था न असत्। न अन्तरिक्ष था न उसके परे आकाश। किसने सब को ढांका था? और कहाँ? और किसके द्वारा रक्षित क्या वहाँ पानी अथाह था? तब न मृत्यु थी न अमरत्व। रात और दिन में वहाँ भेद न था। वहा एक एकाकी स्वावलवी शक्ति से श्वसित था। उसके अतिरिक्त उसके ऊपर कोई न था। अधकार वहा अधेरे में छिपा था। विश्व केवल भेदशून्य जल था। वह जो शून्य मे छिपा बैठा है वही एक अपनी शक्ति से विकसित था। तब सबसे पहिली बार कामना उत्पन्न हुई जो अपने भीतरी मन की प्रारभिक बीजशक्ति थी। ऋषियो ने अपने हृदय में खोजते हुए असत् में सत् के योजक सम्बन्ध को खोज पाया। मध्यस्थित इस बीजशक्ति ने ही फिर ऊपर-नीचे आगे-पीछे तथा भोग्य एव भोक्ता के भेद उत्पन्न किये। यह कौन जानता है तथा कौन कह सकता है कि यह सृष्टि किस कारण हुई। कौन जानता है कि इस सृष्टि में देवता किस प्रकार हुए। वह मूल स्रोत जिससे यह विश्व उत्पन्न हुआ उसे वही जानता है जो उच्चतम द्यौलोक से शासन करता है, जो सर्वदर्शी स्वामी है। (मडल १० सूक्त १२९)

ऋग्वेद के इन्ही मन्त्रो से ब्राह्मणो के ब्रह्मा तथा प्रजापति का आरंभ हुआ। हिरण्यगर्भ प्रजापति सृष्टि के आरंभ के अण्डाकार सृष्टि के सारभूत गर्भ थे। चीनी दार्शनिको ने सृष्टि का आरंभ एक तेजोमय अण्डे से माना जिसमे 'पानुक' अथवा 'कु' देवता उत्पन्न हुए। उन्होने अपनी बलि देकर ही सारी सृष्टि उत्पन्न की।[1] मिस्री दार्शनिको के अनुसार आरंभ मे केवल नियमहीनता का अण्डा (Chaos Egg) था जिससे 'रा' देवता ने नियमबद्ध सृष्टि रची। मिस्र मे अतिप्राचीन-काल में 'क', 'खु' तथा 'खट' नाम से मन, आत्मा तथा शरीररूपी त्रिदेवा की पूजा होती थी। मिस्र के राजर्षि चतुर्थ आमेनहोतेप अथवा आखेनातन ने अपना एक 'अतन' (Aton) धर्म चलाया जिसमे अतन देवता को संसार के स्रष्टा, गर्भ वा अण्डे का रूप दिया गया।[2] ऋग्वेद मे भी प्रजापति विशेषरूप से गर्भ के देवता है। 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते'-(ऋ० म० १०।१८४।१)। विष्णु योनि बनाते है, त्वष्टा उसमे अवयवो की रचना करते है, प्रजापति उसे अपने वीर्य से सिंचन करते है तथा धाता गर्भ का धारण करते है।

परब्रह्म प्रजापति का यथार्थ भौतिक रूप ज्ञात न होने के कारण यह क देव अर्थात् 'कौन देवता' कहलाये। उपर्युक्त हिरण्यगर्भ-सूक्त में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के दोनो अर्थ हो सकते है। एक अर्थ—हम किस देवता के लिए हवि अर्पण करे। दूसरा अर्थ—हम क देव अर्थात् प्रजापति के लिए हवि अर्पण करे। यजुर्वेद-काल तक कदाचित क का अर्थ 'कौन' ही समझा जाता था। यजुर्वेद मे प्रजापति को सम्बोधित करके कहा गया है—'कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कोनामासि।'[3] तू कौन है, कितना है, किसका है, तेरा क्या नाम है? कदाचित यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र भी विश्वस्वरूप प्रजापति को ही सम्बोधित है—'द्यौस्ते पृष्ठम् पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्ष समुद्रो योनि।'[4] आकाश तेरी पीठ है, पृथिवी खडे होने का स्थान है, अन्तरिक्ष आत्मा है तथा समुद्र अर्थात् दिग्देश कालरूपी विस्तार ही तेरी योनि अथवा उत्पन्न होने का स्थान है। यजुर्वेद में प्रजापति को मनु अर्थात् मननशील तथा विश्वकर्मा भी कहा गया है।[5]

ब्राह्मणो मे संवत्सर अथवा यज्ञ को प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेद ७।१८ मे तथा तैत्तिरीयब्राह्मण १।१।१ में प्रजापति को 'मन्थी मन्थिशोचिषा' अर्थात् सूर्य के प्रकाश से संसार को नियमित करनेवाला कहा गया है। प्रजापति ने

---

(१) Myths of China and Japan P. 260 (२) Egyption Myth and Legend P. 73, 74, 87, 233 (३) वा० सं० ७।२९ (४-५) वा०सं० ११ ३३, १२ ६१

जिसके द्वारा यह उग्र आकाश तथा पृथ्वी भी अपने-अपने स्थान पर दृढ है। जो स्वर्लोक तथा सूर्य का आधार है। जो अन्तरिक्ष से बडा है। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

जिसके भय से क्रन्दसी अर्थात् द्यावापृथ्वी अथवा आकाश तथा पृथिवी मन ही मन कापते हैं, जब उनके ऊपर सूर्य का प्रकाश पडता है। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करें।

जब वृहती जलराशि के गर्भ से अग्नि उत्पन्न हुई तब वही देवताओ का प्राण हुआ। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

जिसने अपनी महिमा से उस अपार जलराशि को देखा। उस जलराशि में दक्ष अर्थात् उत्पादन-सामर्थ्य था। उसी जलराशि से यज्ञ उत्पन्न हुआ। जो देवताओ का अधिदेव है। हम उसी क देव के लिए हवि प्रदान करे।

पृथ्वी का जनक वह हमारी हिंसा न करे। जिस सत्यधर्मा ने आकाश को भी उत्पन्न किया। जिसने वृहती तथा चन्द्रा अर्थात् स्वच्छ जलराशि को उत्पन्न किया हम उसी क देव के लिए हवि अर्पण करें।

हे प्रजापति, तू ही एक इस समस्त सृष्टि को जानता है। हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर तू हमारी कामना पूरी कर। हम धनो के पति हो।

उस समय न सत् (होना) था न असत्। न अन्तरिक्ष था न उसके परे आकाश। किसने सब को ढाँका था ? और कहाँ ? और किसके द्वारा रक्षित क्या वहाँ पानी अथाह था ? तब न मृत्यु थी न अमरत्व। रात और दिन में वहाँ भेद न था। वहा एक एकाकी स्वावलवी शक्ति से श्वसित था। उसके अतिरिक्त उसके ऊपर कोई न था। अधकार वहा अधेरे में छिपा था। विश्व केवल भेदशून्य जल था। वह जो शून्य में छिपा बैठा है वही एक अपनी शक्ति से विकसित था। तब सबसे पहिली बार कामना उत्पन्न हुई जो अपने भीतरी मन की प्रारभिक बीजशक्ति थी। ऋषियो ने अपने हृदय में खोजते हुए असत् मे सत् के योजक सम्बन्ध को खोज पाया। मध्यस्थित इस बीजशक्ति ने ही फिर ऊपर-नीचे आगे-पीछे तथा भोग्य एव भोक्ता के भेद उत्पन्न किये। यह कौन जानता है तथा कौन कह सकता है कि यह सृष्टि किस कारण हुई। कौन जानता है कि इस सृष्टि में देवता किस प्रकार हुए। वह मूल स्रोत जिसमे यह विश्व उत्पन्न हुआ उसे वही जानता है जो उच्चतम द्यौलोक से शासन करता है, जो सर्वदर्शी स्वामी है। (मडल १० सूक्त १२९)

ऋग्वेद के इन्ही मन्त्रो से ब्राह्मणो के ब्रह्मा तथा प्रजापति का आरभ हुआ। हिरण्यगर्भ प्रजापति सृष्टि के आरभ के अण्डाकार सृष्टि के सारभूत गर्भ थे। चीनी दार्शनिको ने सृष्टि का आरभ एक तेजोमय अण्डे से माना जिससे 'पानुक' अथवा 'कु' देवता उत्पन्न हुए। उन्होने अपनी वलि देकर ही सारी सृष्टि उत्पन्न की।[१] मिस्री दार्शनिको के अनुसार आरभ में केवल नियमहीनता का अण्डा (Chaos Egg) था जिससे 'रा' देवता ने नियमवद्ध सृष्टि रची। मिस्र में अतिप्राचीन-काल में 'क', 'खु' तथा 'खट' नाम से मन, आत्मा तथा शरीररूपी त्रिदेवा की पूजा होती थी। मिस्र के राजर्षि चतुर्थ आमेनहोतेप अथवा आखेनातन ने अपना एक 'अतन' (Aton) धर्म चलाया जिसमे अतन देवता को ससार के स्रष्टा, गर्भ वा अण्डे का रूप दिया गया।[२] ऋग्वेद में भी प्रजापति विशेपरूप से गर्भ के देवता हैं। 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते'–(ऋ० स० १०।१८४।१)। विष्णु योनि वनाते है, त्वष्टा उसमें अवयवो की रचना करते है, प्रजापति उसे अपने वीर्य से सिंचन करते है तथा धाता गर्भ का धारण करते है।

परब्रह्म प्रजापति का यथार्थ भौतिक रूप ज्ञात न होने के कारण यह क देव अर्थात् 'कौन देवता' कहलाये। उपर्युक्त हिरण्यगर्भ-सूक्त में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के दोनो अर्थ हो सकते है। एक अर्थ—हम किस देवता के लिए हवि अर्पण करे। दूसरा अर्थ—हम क देव अर्थात् प्रजापति के लिए हवि अर्पण करे। यजुर्वेद-काल तक कदाचित क का अर्थ 'कौन' ही समझा जाता था। यजुर्वेद मे प्रजापति को सम्बोधित करके कहा गया है—'कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कोनामासि।'[३] तू कौन है, कितना है, किसका है, तेरा क्या नाम है? कदाचित यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र भी विश्वस्वरूप प्रजापति को ही सम्बोधित है—'द्यौस्ते पृष्ठम् पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्ष समुद्रो योनि।'[४] आकाश तेरी पीठ है, पृथिवी खडे होने का स्थान है, अन्तरिक्ष आत्मा है तथा समुद्र अर्थात् दिग्देश कालरूपी विस्तार ही तेरी योनि अथवा उत्पन्न होने का स्थान है। यजुर्वेद मे प्रजापति को मनु अर्थात् मननशील तथा विश्वकर्मा भी कहा गया है।[५]

ब्राह्मणो में सवत्सर अथवा यज्ञ को प्रजापति कहा गया है। यजुर्वेद ७।१८ मे तथा तैत्तिरीयब्राह्मण १।१।१ में प्रजापति को 'मन्थी मन्थिशोचिषा' अर्थात् सूर्य के प्रकाश से ससार को नियमित करनेवाला कहा गया है। प्रजापति ने

---

(१) Myths of China and Japan P. 260 (२) Egyption Myth and Legend P. 73, 74, 87, 233 (३) वा० सं० ७।२९ (४-५) वा०स० ११।२६, १२।६१

सर्वप्रथम कृत्तिका नक्षत्र में अग्नि को धारण किया ।[१] कृत्तिका वैदिक काल का प्रथम नक्षत्र है अर्थात् इसी स्थान पर वसन्त समाप्त होने के कारण नक्षत्रों की गणना यही से आरभ होती थी । अब अयनचलन के कारण वसत सम्पात शतभिषक् नक्षत्र के समीप चला गया है । तैत्तिरीयब्राह्मण के अनुसार जो कृत्तिका की पूजा नही करते हैं उनके लिए अग्नि गृहो का दाहक होता है ।

पुन प्रजापति ने रोहिणी नक्षत्र मे अग्नि का सृजन किया । उससे देवताओ ने रोहिण्य अर्थात् मनोवाछित वलि पायी । यही रोहिणी का रोहिणित्व है जो रोहिणी मे अग्नि धारण करता है अर्थात् अग्नि जलाकर उसमे हवि प्रदान करता है, वह अपनी सभी मनोवाछित कामनाएँ प्राप्त करता है ।[२]

अगरेजी-पुस्तक 'अर्ली ऐस्ट्रोनोमी एण्ड कौस्मोलौजी' के लेखक श्री मेनन के अनुसार भारत ही नही सभी प्राचीन देशो मे वर्ष के आरभ में तथा वर्ष के अन्तर्गत प्रत्येक ऋतु आदि में यज्ञ होते थे जिनमे पशुओ की वलि चढायी जाती थी। यह उस प्रजापति की पूजा थी जिसने सभी पशुओ को रचा था ।[३] सवत्सर ही प्रजापति था तथा यज्ञ का 'मन्थी' अथवा स्वय यज्ञ भी था । कालरूपी सवत्सर ही बीज से शस्य तथा वृक्ष एव वीर्य से पशुओ को वनानेवाला था । यह सब 'समय' अथवा काल से ही उत्पन्न होते हैं ।

यजुर्वेद में वलि-योग्य पशुओ की अनेक सूचियाँ दी हुई हैं । एक सूची निम्नलिखित प्रकार की है--शूकर, मृग, वृप, सिंह, वानर, लवा, सर्प, शश, ग्राह, हस्ती तथा मूषिक ।[४] राशिचक्र के भाग भी मेष, वृप, कर्क, सिंह, इत्यादि पशुओ के नाम से ही जाने जाते हैं । सवत्सर के प्रतिरूप राशिचक्र के पाश्चात्य नाम 'जोडिआक' का अर्थ कदाचित पशुपति अथवा प्रजापति ही है क्योंकि ग्रीक शब्द 'ज्वौन' का अर्थ पशु होता है । ब्राह्मणो में प्रत्येक राशि नही प्रत्येक नक्षत्र में करने के यज्ञो के वर्णन हैं । प्राचीनकाल के यज्ञो मे पशुओ की वलि होती थी। परन्तु यजुर्वेद में ही पशुओ के स्थान पर उनके 'चित्रो' की वलि की विधि भी दी हुई है। प्रजापति को इसी प्रकार 'प्रजा' का रचनेवाला मानकर पूजा जाता था। प्रजापति द्वारा वनाये पशु आदि वलि द्वारा उसी को अर्पित किये जाते थे ।

ससार मे स्त्रीपुरुप के सयोग से प्रजा की उत्पत्तिको देखकर प्रजापति की पुत्री तथा स्त्री शतरूपा की कल्पना की गयी। प्रजापति के पहिले कुछ भी नही था। केवल सवत्सर-रूप प्रजापति था । उसने अपनी सगिनी की रचना की।

(१) तै० ब्रा० १।१।२ (२) तै० ब्रा० १।१।२ (3) Early Astronomy and Cosmology. P. 52 (४) वा० स० ५।५, ११, ४६, ६।६, ४, १७

उसके द्वारा रचे जाने के कारण वह उसकी पुत्री थी। परन्तु प्रजा के सृजन के हेतु प्रजापति ने उसे अपनी स्त्री बनाना चाहा। शतरूपा ने उससे बचने के लिए मृगी, गो, आदि अनेक रूप धारण किये। प्रजापति भी मृग, वृषभ आदि का रूप धारण कर शतरूपा से सृष्टि उत्पन्न करता गया।[1] शतरूपा काली का भी नाम है तथा पहले बताया जा चुका है, काली पृथ्वी है। द्यौष्पितर, द्यावा-पृथ्वी आदि वैदिक शब्दो में आकाश के पिता तथा पृथ्वी अथवा द्यावापृथ्वी की माता होने का वर्णन मिलता है। कालरूप प्रजापति संवत्सर ने द्यावापृथ्वी-रूपिणी शतरूपा में सृष्टि उत्पन्न की। काल अथवा दिग्देशकाल-रूपी सूक्ष्म प्रजापति हैं तथा विश्व के स्थूल तत्व ही शतरूपा माता हैं।

यजुर्वेद तथा ब्राह्मणो में प्रजापति ही आदिस्रष्टा हैं परन्तु महाकाव्य तथा पुराणो में ब्रह्मा सृष्टि के देवता हो गये थे तथा उन्होने अनेक प्रजापति बनाये जिन्होने प्रजा रची।[2] ऋग्वेद मे एकादश रुद्र, रुद्र के ही संतान थे। मिस्र के महादेव 'असरआ' के पुत्र 'होरस' अपने पिता के ही अवतार थे तथा वह अपनी माता के पति बने। प्रत्येक संवत्सर अपने पूर्व के संवत्सर का पुत्र होता है परन्तु अपनी माता वा पुत्री द्यावापृथिवी का पति भी होता है। यजुर्वेद में ही संवत्सर के संवत्सर, परिवत्सर, आदि पांच नाम हैं। वेदो मे धाता, विधाता, आदि ब्रह्मा के नाम एवं दक्ष आदि आदित्यो तथा प्रजापतियो के नाम कई स्थानो पर आये हैं। यह अनेक प्रजापति वा आदित्य परस्पर पिता-पुत्र होकर भी एक ही थे। प्रजापतियो की स्त्रियां वा कन्याएं प्रसूति, आकूति, ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति आदि[3] स्पष्ट ही विश्व के विभिन्न गुणो की मूर्तियां हैं।

संवत्सर ही सृष्टि का रचयिता है। संवत्सर के विभागो की गणना यज्ञो द्वारा रखी जाती है। अतः यज्ञ भी प्रजापति है। चतुष्कोण यज्ञवेदी ही चतुर्भुज विष्णु तथा चतुरानन ब्रह्मा है। पुनः संवत्सर अथवा काल ही सृष्टि को नियमित करनेवाला यम, सभी चर-अचर प्रकृति को निज धर्म में संलग्न करनेवाला धर्म तथा सभी का क्षय करनेवाला मृत्यु है।

—— ० ——

(१) वृ० उपनिषद् (२) विष्णुपुराण १।७ (३) विष्णुपुराण १।७

तेरहवाँ अध्याय

अश्विनीकुमार, गन्धर्व तथा अप्सरा

वैदिक देवताओ में अश्विनीकुमारो का भौतिक अर्थ निश्चित करना सब से कठिन है । एडिनवरा विश्वविद्यालय के सस्कृत अध्यापक श्री कीथ ने ऋग्वेदोक्त अश्विनीकुमार-सम्बन्धी सूक्तो का साराश इस प्रकार दिया है ।[१] अश्विन नासत्य अर्थात् अनिवर्चनीय तथा दस्र अर्थात् आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले है । वे सुन्दर है, वलिष्ट है, रक्तवर्ण अथवा रजतवर्ण है तथा उनका पथ रक्तवर्ण वा सुवर्ण है । उनके पास मधु का पात्र है । तथा वे यज्ञ एव यजमान को अपने मधु के थैले से स्पर्श करते है । उनका रथ मधुमान है तथा उस रथ मे तीन पहिये है, तीन बैठने के स्थान तथा अन्य सव कुछ भी तीन-तीन है । अश्विनो का प्रादुर्भाव उषाकाल में होता है । वह उषा के पीछे-पीछे अपने रथ में जाते है । जब उनका रथ चलता है तभी उषा का जन्म होता है । फिर भी वह केवल उषाकाल नही, मध्याह्नकाल तथा सध्या को भी यज्ञ में आते है । वह आकाश तथा समुद्र की विवस्वन्त तथा सरण्यु की अथवा पूषा देवता की सन्तान है । वह दोनो साथ रहते है जैसे एक शरीर के दो हाथ अथवा चक्षु, पर वे अलग-अलग भी उत्पन्न होते है । उन दोनो का विवाह सूर्य की कन्या सूर्या से हुआ जिसके लिए उनके रथ में तीसरा स्थान है। वे अतिशय चमत्कारिक वैद्य है । उन्होने अतिवृद्ध च्यवन को पुन युवा वनाया ।

अश्विनो का भारतीय भाष्यकारो ने अनेक प्रकार का अर्थ लगाया । और्णवाभ के मत से अश्विन दो अश्वारोही राजकुमार थे जिन्होने प्राचीनकाल में अनेक पराक्रम किये थे ।[२] ऋग्वेद के मन्त्रो मे अश्विनो ने तुग्र के सुत भुज्य को समुद्र मे डुवने से वचाया, अत्रि को दस्युओ द्वारा जलाये जाने से वचाया, रेभ को

(१) Mythology of All Races–Indian P 30 (२) निरुक्तम् १२।१।१

मृत्यु से बचाया । उन्होंने न केवल च्यवन को यौवन-दान दिया वरन उन्होंने ऋज्राश्व की भी दृष्टि लौटायी तथा विश्पला को उसके कटे पांव के स्थान पर लोहे का पांव दिया ।[1] इन वर्णनो मे तो अश्विनीकुमार पराक्रमी तथा वैद्यक-शास्त्र जाननेवाले दो भाइयो-जैसे लगते हैं जो सम्भवत किसी राजा के दो पुत्र रहे हो । अश्विनाकुमार आरम्भ मे देवता न थे । इसकी पुष्टि महाभारत की उस कथा मे होती है जिसमें अश्विनीकुमारो ने सोमयज्ञ में भाग पाने का वर मांग कर ही च्यवन ऋषि की दृष्टि तथा उनकी युवावस्था उन्हे लौटायी थी ।[2] मोक्ष-मूलर के अनुसार च्यवन अस्त होते हुए सूर्य है जिनका अश्विन जीर्णोद्धार करते हैं ।[3]

फिर भी ऋग्वेद में ही अनेक ऐसे वर्णन हैं जिनमे अश्विनीकुमारो का कोई आकाशिक विभूति होना भी युक्तिसगत जान पडता है । 'अजोहवींदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुंचत वृकस्य'[4] इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने इस प्रकार लगाया है—वर्तिका अर्थात् वर्तनशीला उपा युवा अश्विनो को वृक अर्थात् रात्रि के अन्धकार अथवा उपा के विनाशकारी सूर्य से बचाने के लिए पुकारती है ।

अश्विनो के वैद्यक-सामर्थ्य की प्रशसा अनेक स्थानो पर है । इन्हें विशेषत कुष्टरोग तथा क्षयरोग का निवारक तथा दृष्टि एव श्रवणशक्ति को लौटाने-वाला कहा गया है ।[5] 'यव वृकेणाश्विना वपन्तेप दुहन्ता मनुपाय दस्रा । अभि-दस्युं बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथरार्याय ।' इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने इस प्रकार किया है—हे अश्विन ! जिस प्रकार वृक अर्थात् हल से यव के बीज बोये जाते हैं उसी प्रकार बकुर सूर्य से जल बरसा कर तुम मनुष्यो के लिए अन्न का दोहन करते हो । हे दस्युओ को मारनेवाले ! तुमने 'आर्य' के लिए 'उ ' अर्थात् विस्तीर्ण वा विशाल ज्योति अर्थात् चक्षु बनाये ।' दस्यु आर्यों के मानुषी शत्रु ही थे । बकुर सूर्य ही नही वृक अर्थात् हल का भी विशेषण हो सकता है । अश्विनीकुमार सम्भवत कृषिविद्या में पारगत दस्युओ के हन्ता वीर राजकुमार थे जिन्होंने आर्य की ज्योति अर्थात् आर्यो के राज्य का विस्तार किया । मिस्र तथा चीन के अनेक राजा शस्त्रविद्या, कृषिविद्या, वैद्यक तथा ठठेरा, कुम्हार इत्यादि के कार्य में पारगत थे । ऋग्वेद में अन्यत्र[6] अश्विनो को 'हिम' से 'अग्नि' को बनानेवाला अथवा हिम से बचने के लिए अग्नि का बनानेवाला कहा गया है । निरुक्तकार ने अश्विनो को सूर्य तथा चन्द्रमा, रात्रि

(१) Mythology of All Races-Indian P 31. (२) ऋ० म० १।११७।१६, निरुक्त ५।४।२१ (३) Contributions—589 (४) ऋ० म० १।११७,८ (५) ऋ० म० १।११७।२१ (६) ऋ० म० १।११६।८

चौदहवाँ अध्याय

रामायण

जर्मन विद्वान् जैकोबी ने अपनी पुस्तक 'डास रामायण' में राम तथा सीता की कथा को भौतिक घटनाओं का रूपक माना है। सीता स्पष्ट ही मनुष्य न होकर कोई दैवी शक्ति है। रामायण मे दी हुई कथा के अनुसार सीता की उत्पत्ति राजा जनक के हल से हुई थी। 'अथ मे कृषतः क्षेत्रं लांगलादुत्थिता ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता'––(वाल्मीकिय रामायण –१।६६।१३)। ऋग्वेद मे खेत मे हल द्वारा किये गये चिह्न को सीता कहा गया है तथा लागल अर्थात् हलफाल तथा हल द्वारा किये गये चिह्न सीता की वन्दना इस प्रकार से की गयी है––

'शुनं वाहा शुनं नर शुनं कृषतु लांगलम्।' ––(ऋ० स० ४।५७।४)। .. ....सुख को लानेवाले इन्द्र तथा वायु सुख की धारा बहायें। कृषक नर सुख उत्पन्न करें। हल से भी सुख की खेती हो। 'अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा। तथा न सुभगासति यथा न सुफलासति।'––(ऋ० स० ४।५७।६)। हे सुभगे सीते! तू वर्तमान रह। हम तेरी वन्दना करते हैं। तू हमारे लिए सुन्दर धान्य उत्पन्न कर। तुझ से हमें उत्तम फल प्राप्त हो।

'इन्द्र सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु। सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा-समाम्।'––(ऋ० म० ४।५७।७)। सीता को साथ लेकर इन्द्र चलें। पूषा देव सीता के पीछे-पीछे चलें अर्थात् इन्द्र द्वारा लाये गये शस्य का पोषण करें अथवा उसकी वृद्धि करें। यह सीता दुधारु गाय की भाँति प्रतिवर्ष हमारे लिए भोजन देनेवाली होवे।

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।'––(ऋ० म० ४।५७।८)। हमारे लिए फाल अर्थात् भूमि-विदारक काष्ठ भलीभाँति कृषि करे। हल के बैल

हमारे लिए सुख को लाये। पर्जन्य अर्थात् वृष्टि-देवता मधुर अर्थात् सुखकर जल से हमारे खेत को सीचे। हे शुनासीर अर्थात् शुन अथवा आनेवाले इन्द्र किंवा वायु तथा सीर अर्थात् सरण वा सक्रमण करनेवाले आदित्य अथवा विष्णु हमारे लिए कृषि की उन्नति करके सुख को लायें।

अथर्ववेद में सीता की ऋग्वेदोक्त वन्दना उद्धृत है तथा उसके साथ यह मन्त्र भी है—

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा न सीते पयसाम्याव वृत्स्वोर्जस्वतीघृतवत् पिन्वमाना।

—अ० वे० ३।४।२।६

मधु तथा घृत से सिक्त अर्थात् जलो से सिक्त एव विश्वेदेव तथा मरुतो द्वारा नियमित हे सीते, हमें पयस् से परिपूर्ण करो।

अथर्ववेदीय कौशिक गृह्यसूत्र के तेरहवे अध्याय की १०६ वी कण्डिका में कृषक द्वारा 'सीतापूजन' की निम्नलिखित विधि दी गयी है —

'अरण्य के अर्धभाग में जाकर क्षेत्र के पूर्वभाग में सीता बना कर उसके मध्यभाग में ईंधन रखे। फिर सीता की परिक्रमा आदि कर के उसके चतुर्दिक परिधि खीचकर सीता के लिए इन वन्दनाओ से हवन करे। तू वित्त है, तू हमें पुष्ट करनेवाली है, तू हमारी श्री है तू पुष्पवती है, हमारा पोषण करनेवाली है। हे सीते! तू सर्वांग-शोभिनी है। हम सहस्रो प्रकार की कृषि तेरे ही द्वारा करते है। तू उर्वरा अर्थात् बहुत अन्न उत्पन्न करनेवाली तू पर्जन्य की पत्नी है। तू अभिजित् अर्थात् वर्षाऋतु के नक्षत्र अथवा विष्णु की पत्नी अभिजिता है। तू कालनेत्री अर्थात् अग्नि की अधिष्ठात्री देवी भी है। हम द्विपदो तथा चतुष्पदो का तेरे द्वारा कल्याण हो। जिसके सामने देवासुर तुच्छ है तथा जो मनुष्य, गन्धर्व तथा राक्षस सभी को निर्बल कर देती है उसी शक्ति के साथ हे सीते तू आकर हमारी पूजा ग्रहण कर तथा हमारे लिए सहस्रो खाद्यपदार्थो की सृष्टि कर। सीता सुवर्ण बिखेरनेवाली है अर्थात् सुवर्ण के रंग का अथवा उसी के समान बहुमूल्य अन्न उत्पन्न करनेवाली है। सीता पुष्करिणी है अर्थात् पुष्कर अथवा कल्याण कर विष्णु की पत्नी है अथवा स्वय कल्याणकारिणी है। इन्द्र सीता को अपने राधस् अर्थात् धन अथवा प्रताप से पुष्ट करते है। दिशा, प्रदिशा, दिन, रात, पखवारे, महीने तथा ऋतुओ के साथ देवताओ तथा मनुष्यो की सीता ही रक्षा करती है।'. पारस्कर गृह्यसूत्र में भी लगभग इन्ही शब्दो में सीता की वन्दना है।

हिन्देशियाई द्वीप बाली में सीता तथा कृषि का यह सम्बन्ध अब तक सुरक्षित है। वहाँ जब अनावृष्टि वा अतिवृष्टि से फसल के मारे जाने का भय होता है तब मन्दिरो में जमा होकर लोग 'केटजक' नृत्य का आयोजन करते हैं जिसमें सीताहरण तथा रावण-वध के पश्चात् सीता के उद्धार के दृश्य दिखाये जाते हैं।[1] यो भी, बाली के हिन्दू धर्मावलम्बी लोग समय-समय पर प्रधानतः कृषि की उन्नति के लिए रामलीला के भिन्न-भिन्न अशो का आयोजन करते रहते हैं।

हल द्वारा बनायी गयी सीता की वेदोक्त तथा सूत्रोक्त वन्दना से रामायण के कई अशो का स्मरण हो आता है। इन्द्र के साथ आनेवाली तथा पूषा द्वारा अनुकरण की जानेवाली सीता रामायण में राम के साथ आती है तथा लक्ष्मण उनका अनुकरण करते हैं। राम तथा लक्ष्मण इन्द्र तथा पूषा की भाँति विष्णु अथवा आदित्य के ही रूप हैं। अरण्य के मध्यभाग में पूजी जानेवाली सीता रामायण में भी अरण्य में जाती है। कौशिक सूत्रोक्त सीता-पूजनविधि में सीता के चतुर्दिक परिधि खीची जाती है तथा रामायण में भी लक्ष्मण सीता के चतुर्दिक अपने धनुष से चिह्न बनाते हैं। कौशिक-सूत्र की सीता 'हिरण्यस्रक्' अर्थात् सोने जैसा अन्न बिखेरनेवाली है। रामायण की सीता भी रावण द्वारा हरी जाते समय अपने सोने के गहने बिखेरती जाती हैं। ऋग्वेद की सीता के सहायक 'शुनासीर' अर्थात् इन्द्र तथा वायु अथवा वायु तथा आदित्य हैं। रामायण में सीता के सहायक इन्द्र के समान परमैश्वर्यशाली तथा सूर्य के वंशज राम तथा वायुपुत्र हनुमान हैं। ऋग्वेद की तडित् की देवी वाक् ने रुद्र के धनुष की प्रत्यचा चढायी थी। सीता ने भी रुद्र के धनुष को सहज ही उठा लिया था।—(ऋक्सहिता १।११।५)। जब 'वल' नामक राक्षस ने गो अर्थात् भोजनोत्पादक कृषि अथवा सीता को अथवा कृषिवर्धक जल को अपनी गुफा में छिपा रखा तब इन्द्र ने अपने पर्वताकार मेघो के साथ जाकर वल से युद्ध किया तथा 'गो' को बन्धनमुक्त किया।

राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सर्वव्यापी विष्णु के ही चार अश थे।

तत पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानम् चतुर्विधम्। पितरं रोचयामास तदा दशरथ नृपम्।—(वाल्मीकिय रामायण १।१५।३१)।

मिस्री धर्म में सृष्टि का आरम्भ देवताओ तथा उनकी पत्नियो से हुआ। उनके नाम क्रमश नु तथा नुट, हेहू तथा हेहुट, केकुई तथा केकुइट एव केठ

---

(१) BALI—Nikola Drakulik & Max Bajetto W. Van Hoeve Ltd, Bandeong-Indonesia and the Hague-Netherlands. 1951.

तथा केब्ट थे। इनमे नुट अन्य वर्णनो में आकाश-रूपी समुद्र की देवी थीं तथा भारतीय अदिति की भाँति सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराओ की माता थी। नु भारतीय वरुण अथवा क्षीरसागर-निवासी विष्णु की भाँति सृष्टि के पूर्व की अपार जल-राशि के देवता थे। इस देवचतुष्टय एव तत्सम्बन्धी अन्य देवताओ तथा देवियो का भौतिक अर्थ समझ मे नही आता पर इतना स्पष्ट है कि ये सभी प्रकाश अथवा अन्धकार एव गति अथवा शान्ति के ही रूप थे। बैबीलोन में भी इन चार आदि-देवताओ तथा इनकी स्त्रियो की पूजा क्रमश. अप्सु-तिआमत, लखमु-लखाम, अशार-किशार तथा या-दमकीना के नाम से होती थी। इनमें अप्सु प्रारंभिक प्रलय-जल अप्स के देवता थे तथा तिआमत उस भयकर जल-राशि की अधिष्ठात्री देवी विकरालरूपिणी चण्डिका थी।[1]

विष्णु अर्थात् विश्वव्यापी विश्वपोषक सूर्य के इन चार अशो की तीन माताएँ थीं—कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा। रामायण में इन्हें 'ह्रीश्रीकीर्ति' के तुल्य कहा गया है।[2] मिस्र में उनके महादेव अथवा विष्णु सरीखे महान देवता 'असरआ' अथवा ओसाइरिस की भी तीन माताएँ आइसिस, नेफ्थिस तथा नुट थीं जो क्रमश आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी की द्योतक थीं। भारत के महादेव भी इसी प्रकार त्र्यम्बक अर्थात् तीन माताओंवाले थे।

रामलक्ष्मण आदि के पिता राजा दशरथ स्वय दस दिशाओ मे व्याप्त प्रजापति हैं।

ऋग्वेदीय भावयव्य राजा के पुत्र स्वनय ने कक्षीवान ऋषि को चार घोडों वाले दशरथ दान दिये थे।[3] कदाचित दस रथो के दान की उस समय विशेष महत्ता थी। दस रथो का दान देनेवाले राजा का भी नाम दशरथ हो सकता है।

जगत्पिता प्रजापति विशेष रूप से गर्भ के रक्षक देवता माने जाते थे। यजुर्वेद में गर्भकाल दस मास का ही कहा गया है।

एजतु दशमास्यो गर्भोजरायुणा सह।[4] दस महीने का गर्भ सूर्य के द्वारा अथवा साथ पुष्ट होता है।

यजुर्वेद में एक स्थान पर दस ही महीने के नाम मिलते हैं तथा पाश्चात्य पचाग के भी मार्च से लेकर दिसम्बर तक इन दस महीनो के नाम प्राचीन हैं

(१) Myths of Babylon and Assyria P. 138 (२) वाल्मीकि रामायण १।१५।२० (३) ऋ० स० १।१२६।४ (४) य० सं० ८।२८

तथा अनेक विद्वानों के मत से जनवरी तथा फरवरी ये दो महीने पीछे चलकर प्रचलित हुए ।[1] ऋग्वेद में अग्नि को भी रथ, रथी तथा दश के साथ या 'दश' पर आनेवाला अर्थात् दश उँगलियों से मथने पर अरणि से उत्पन्न होनेवाला कहा गया है ।[2] यज्ञरूपी विष्णु का आधार अग्नि है। स्वयं सूर्य दशरथ हैं क्योंकि उनसे किरणें दश दिशाओं में जाती हैं । दश दिशाओं के आधार पर स्थित आकाश के देवता द्यौष्पितर भी 'दशरथ' हैं । संवत्सर, अग्नि, यज्ञ, द्यौष्पितर तथा सूर्य इनमें से कौन रामायण के दशरथ हैं, यह निश्चय करना कठिन है । वास्तव में ये सभी वेदांग दर्शन के अनुसार एक दूसरे के रूप हैं तथा रामायण का वर्णन इनमें से किसी पर भी लागू हो सकता है । ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र तथा मरुद्गणों को रघुष्यद्, रघुपत्म आदि अर्थात् तीव्रगामी कहा गया है । राम भी रघुकुल में उत्पन्न हुए थे ।

सीता, राम तथा दशरथ का वैदिक कृषिदेवी, विष्णु तथा प्रजापति, यज्ञ अथवा अग्नि देव के समान वर्णनों का यह अर्थ नहीं माना जा सकता कि इन नामों के लौकिक अथवा अलौकिक शक्तिवाले स्त्री-पुरुष कभी थे ही नहीं । सम्भव है, इन नामों से प्रतापी व्यक्ति हुए थे जिनमें मनुष्यातीत गुण प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान थे । यह भी सम्भव है कि ऐसे गुणवाले ऐतिहासिक व्यक्तियों को पीछे से ये नाम दे दिये गये । परन्तु इनके विषय में जो कथाएँ हैं वे वेदोक्त भौतिक शक्तियों के वर्णन से मिलती-जुलती हैं तथा कदाचित इन कथाओं का अधिकांश वेदोक्त प्राकृतिक घटनाओं के वर्णनों का रूपक है ।

राम का शत्रु दशानन रावण ब्रह्मा का पुजारी था तथा उन्हीं के वरदान से वह इतना शक्तिशाली हो गया था । अथर्ववेद में दश सिरवाले एक ब्राह्मण का वर्णन है, जिसने सर्वप्रथम सोमरस का पान किया था ।[3]

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ।

ऋग्वेद में इन्द्र के एक और शत्रु अनेक सिरवाले विश्वरूप भी थे जो देवताओं के पुरोहित होते हुए भी असुरों से मिले हुए थे । सीता को हरनेवाला रावण कृषि अथवा वृष्टि को हरनेवाले वृत्र का ही रूप है । वृत्र अनावृष्टिकारक असुर है तथा स्वयं मेघ भी है जिसके वध से उसके द्वारा अवरुद्ध जल पृथ्वी पर आता

(१) Encyclopeadia Brittanica—Calendar (२) ऋ० सं० ८।७२।७-८
(३) अथर्ववेद संहिता ४।१।६।१

है। रावण के पुत्र मेघनाथ का नाम इन्द्रजित् है। ऋग्वेद में अनेक स्थानो पर इन्द्र का वृत्र से प्राय परास्त हो जाने का भी वर्णन है। रावण का भाई कुम्भ-कर्ण वृत्र की भाँति ६ महीने सोया रहता था। रावण की सेना का वर्णन वैदिक वृत्र के अनुचरो के वर्णन जैसा है। स्वय 'रावण' का अर्थ 'रव' अर्थात् घोर शब्द करनेवाला वृत्र अथवा आच्छादक किंवा जलनिरोधक मेघ ही है।

राम के प्रधान सहायक हनुमान हैं। हनु का अर्थ चिबुक अथवा 'दाढ' है। ऋग्वेद में अग्नि तथा इन्द्र दोनो को ही शिप्री, महाहनु अर्थात् हनुमान कहा गया है। वैसे हनुमान लागूल वानर थे तथा सीता को लागल अर्थात् हल द्वारा ढूँढा जाता है। हनुमान राम के दूत थे। ऋग्वेदोक्त अग्नि-वर्णन में अग्नि भी देवदूत है। हनुमान ने राक्षसों की लका भस्म कर दी। अग्नि ने भी दस्यु-पुरो को जलाया था। हनुमान की भाँति वेदोक्त अग्नि मे पर्वतो को उखाडने तथा वृक्षो को गिरा देने की शक्ति थी। यह सब पूर्वकथित 'अग्नि'-चरित्र में कहा जा चुका है। हनुमान वायु वा मरुत के पुत्र अथवा अजनि अर्थात् अन्तरिक्ष के गर्भ से रुद्र के पुत्र है तथा उनमें ऋग्वेदोक्त मरुद्गणो के गुण भी वर्तमान हैं। हनुमान के अनेक गुण इन्द्र के समान हैं। इन्द्र ने उषा का रथ तथा सूर्य का रथ तथा सूर्य का चक्र तोड दिया था। हनुमान भी बाल-रवि भक्षण कर गये थे। एडिनबरा-विश्वविद्यालय के सस्कृत-अध्यापक 'कीथ' महाशय के अनुसार हनुमान वृष्टिकारक मौसिमी वायु के अधिष्ठाता हैं जो दक्षिण दिशा में अर्थात् लका की ओर, सीता अर्थात् कृषि अथवा कृषिवर्धक जल की खोज में जाते हैं। उनकी सहायता से विश्वपोषक विष्णु-रूपी राम जलनिरोधक अर्थात् कृषिके हेतु हानिकारक शक्तियो पर विजय प्राप्त करके कृषिवर्धक वर्षा को ले आते हैं। बीजारोपण के समय कृषि पुन सीता की भाँति पृथ्वी के गर्भ मे चली जाती है।

रामायण के नायक राम समय-समय पर ऋग्वेद के इन्द्र की भाँति राक्षसो को अर्थात् मनुष्य को कष्ट पहुँचानेवाली शक्तियो को नष्ट करते थे। इन राक्षसो में विश्वरूप की भाँति एक इन्द्रशत्रु तीन शिरोवाला त्रिशिरा भी था। ऋग्वेद १।८०।७ में इन्द्र को मायावी राक्षस माया-मृग को मारनेवाला कहा गया है। राम ने भी मायामृग-रूपी मारीच का वध किया था। विष्णु ने राजा बलि को बाँधा तथा राम ने बलि को मारा। राम ने विभीषण को लका का राजा बनाया। ऋग्वेद में स्वय देवराज इन्द्र का नाम विभीषण है।[1] अथर्ववेद में 'राम' शब्द रोगनिवारक ओषधियो के लिए भी आया है।[2]

---

(१) ऋ० स० ५।३४।६ देखिये पृष्ठ ४६ (२) अ० स० १।५।२।१

रामायण की कथा वस्तुत वेदोक्त प्राकृतिक देवी-देवताओ के वर्णन का रूपक है। रामायणकार ने स्वय अपने ग्रन्थ को 'वेद के अर्थ को स्पष्ट करनेवाला' कहा है—**स तु मेधाविनी द्रष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठि तौ। वेदोपबृंहणार्थाय ताव-ग्राहयात प्रभु**। पवित्र वाल्मीकि ने उन दोनो भाइयो अर्थात् लवकुश को मेधावी तथा वेदो में निपुण देख कर वेदार्थ को स्पष्ट करने के हेतु उन्हें इस काव्य को ग्रहण कराया।[१]

राम के प्रधान सहायक हनुमान के विषय में तो कहा जा चुका है। यों राम की सारी सेना वानरो की ही थी। प्राचीन जातियो में एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उछलनेवाले वानरो को आकाशचारी देवताओ का प्रतिरूप माना जाता था। ऋग्वेद में सूर्य को वृषाकपि कहा गया है। सीता-हनुमान-सवाद की भाँति ऋग्वेद में इन्द्राणि तथा वृषाकपि का सवाद उद्धृत है।[२] यजुर्वेद में शुक्र अर्थात् ज्येष्ठ के महीने में 'कपि' को वलि का पशु कहा गया है। चीनी राशिचक्र में इस मास की राशि को वानर-राशि कहा जाता है।[३] इसी महीने में वृष्टि को लानेवाली हवाएँ उठने लगती हैं। रामायण में वानर-सेना की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है। जब विष्णु ने दशरथ के यहाँ पुत्र-रूप से उत्पन्न होना स्वीकृत कर लिया तब ब्रह्मा ने देवताओ को अप्सराओ इत्यादि के शरीर से वायु के तुल्य वानर-रूप पुत्रो को उत्पन्न करने को कहा जो विष्णु के कार्य में सहाय्य दे सकें। ऋग्वेदोक्त इन्द्र, सूर्य, वृहस्पति, अश्विनीकुमार आदि देवताओ से ही भिन्न-भिन्न वानर उत्पन्न हुए। स्वय वायु ने हनुमान को जन्म दिया।[४] वानरों के साथ ऋक्षो ने भी राम की सहायता की थी। ऋग्वेद में 'ऋक्ष' शब्द तारा अथवा तारामडलो किंवा नक्षत्रो के लिए व्यवहार किया गया है। ऐसा प्राचीन विश्वास है कि भिन्न-भिन्न नक्षत्रो के प्रभाव से ही सूर्य द्वारा भिन्न-भिन्न ऋतुओ की उत्पत्ति होती है।

रामचन्द्र के जन्म का समय वाल्मीकिय रामायण में इस प्रकार दिया गया है। चैत्र मास नवमी तिथि दिति दैवत्य अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्र तथा कर्क लग्न में चन्द्रमा के साथ वृहस्पति के उदय होने पर जब पाँच तारा-ग्रह वुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति तथा शनि अपने-अपने उच्च स्थान में थे, ऐसे ही समय में राम का जन्म हुआ।[५] पुनर्वसु नक्षत्र रेवती से गणना करने पर नवा नक्षत्र

---

(१) रामायण १।४।६ (२) ऋ० स० १०।८६ देखिये पृष्ठ ५३ (३) Early Astronomy and Cosmology. P. 56, 57, 173 (४) वाल्मीकिय रामायण १।१७–१–२५ (५) वाल्मीकिय रामायण १।१८।७–११

है, अत चैत्र की नवमी को जब चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में होगा तब सूर्य रेवती नक्षत्र मे होगे। रामायण के रचनाकाल तक वसत सापातिक विन्दु रेवती नक्षत्र के समीप चला आया था। वैदिक तथा वेदाग-काल में पूर्णिमा तथा अमावस्या के साथ-साथ अष्टक से भी समय की गणना होती थी।[१] अष्टक वह समय है जब सूर्य तथा चन्द्रमा में वृत्त के चतुर्थांश अर्थात् ९०° का अन्तर हो। इस समय का ठीक-ठीक ज्ञान करना पूर्णिमा अथवा अमावस्या के काल-निर्धारण से कहीं अधिक सुगम है। सवत्सर की गणना सभी प्राचीन देशो में वसत सापातिक विन्दु से ही आरम्भ होती थी जब सूर्य ठीक-ठीक विषुव स्थान पर होता है तथा दिनरात समान होते हैं। सैद्धान्तिक युग-पद्धति में युगो का अथवा मन्वन्तर कल्प आदि का आरम्भ ग्रहो के उच्च स्थान से ही लिया गया है। सृष्टि का आरम्भ अर्थात् ग्रहो की गति का आरम्भ भी वैसे ही समय से माना गया है।[२] राम के जन्म के समय चन्द्रमा का उदय हो रहा था। यह समय सूर्य के रेवती नक्षत्र मे होने का अर्थात् मेष-सक्रान्ति का था। नवमी को चन्द्रमा का उदय दोपहर को होगा जब मेष-राशि शिरोविन्दु के समीप तथा उससे तीन राशि हटकर कर्क-राशि पूर्व क्षितिज पर होगे। कर्कराशि के उदय होने का समय कर्क लग्न का समय है। बृहस्पति ग्रह की गति से भी सवत्सरो की गणना अब तक होती आयी है। राम के जन्म का समय स्पष्टत किसी ज्योतिषीय पद्धति के अनुसार काल-गणना आरम्भ करने का समय जान पडता है जिसमे बार्हस्पत्य युगपद्धति अष्टक गणनाशैली तथा रेवती-स्थित वसत सपात की परिपाटी थी।

राम ने जिन राक्षसो का वध किया वे यज्ञ में विघ्न देनेवाले थे। यज्ञ का वैदिक नाम 'क्रतु' अर्थात् कर्म है तथा वृत्र का अर्थ विघ्नकारी है। राम ने सर्व-प्रथम ताटका राक्षसी को मारा था। ताटका 'पुरुषादी, महायक्षी, विकृता तथा विकृतानना' थी। 'वह बाहुओं को उठाकर गर्जती हुई राम पर दौडी। बडी धूल उडाती हुई उस ताटका ने धूल के प्रभाव से उन दोनो राम-लक्ष्मण को मुहूर्त भर के लिए मोहित कर दिया।'[३] आइसलैंड द्वीप से लेकर बैबीलोन पर्यन्त झझावात किसी पुरुष अथवा स्त्री रूपधारी राक्षस के प्रभाव का फल माना जाता है। स्काटलैंड में झझावात को 'कालियक' नाम की राक्षसी कहते थे जिसपर सूर्य देवता ने विजय पायी। बैबीलोन के 'मरोदक' देवता ने उच्छृंखलता की अधिष्ठात्री दानवी 'तिआमत' का वध किया।[४]

---

(१) भारतीय ज्योतिशास्त्र-४४। (२) सूर्यसिद्धान्त। (३) वा० रा० १।२६। (४) Myths of Babylon and Assyria P. 73, 101, 144.

राक्षसो का वध करने के हेतु विश्वामित्र ने राम को जो अस्त्र दिये उनके नाम ये है—दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्र, शैवशूल, ब्रह्मशिरस्, ऐषीक, मोदकीगदा, शिखरीगदा, धर्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, वारुणास्त्र, शुष्क-अशनि, आर्द्रअशनि, पैनाक, नारायणास्त्र, शिखर नामक आग्नेयास्त्र, प्रथम नामक वायव्यास्त्र, हयशिरस्, क्रौंच, विष्णुशक्ति, रुद्रशक्ति, ककाल, मुसल, कापाल, ककण, असिरत्न, मानव, प्रस्वापन, प्रशमन, सौम्य, वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मदन, मोहन, तामस, सौमन, सवर्त, सौम्य, शिशिर, त्वाष्ट, शितेषु .. ...।[1] भिन्न-भिन्न प्रकार के चक्र समय अथवा सवत्सर के ही रूप है, जैसा चतुर्भुज विष्णु के आयुधो के वर्णन में कहा जा चुका है। वज्र, ब्रह्मास्त्र आदि तथा शुष्क एव आर्द्रअशनि तड़ित् के भिन्न-भिन्न रूप है। अन्य अस्त्र सूर्य अथवा अन्य भौतिक शक्तियो के विभिन्न गुणो के नाम है। राम के आयुध कल्याणकारी तथा विपत्तिनिवारक प्राकृतिक विभूतियो के ही भिन्न-भिन्न गुण है। राक्षसो पर राम की विजय प्रकृति के सौम्य तथा पोषक गुणो की ही जीत है। द्विपद तथा चतुष्पदों का विनाश करनेवाली प्राकृतिक आपदाएँ ही राक्षस-राक्षसी है।

रामायण में राम द्वारा रुद्र के धनुष का टूटना कदाचित वैष्णव-धर्म की रौद्र-धर्म पर महत्ता दिखाने की चेष्टा है। इन्द्र के अथवा रुद्र के परशु को तीक्ष्ण करनेवाले अग्नि के प्रतिरूप परशुराम है। परशुराम भृगुवशी थे। शुक्र तारा को भी भृगु अथवा भार्गव कहते है। शुक्र का ही ऋग्वैदिक नाम कवि उशना है तथा आँधी-पानी के देवता इन्द्र एव कवि उशना के युद्ध का वर्णन ऋग्वेद में आया है।[2]

राम का वनवास चौदह वर्ष के लिए हुआ था। वर्ष, समय अथवा देश का कोई भी विभाग हो सकता है। एक सवत्सर में सूर्य २८ नक्षत्रो को पार करते है। इनमें से १४ नक्षत्र उत्तरायण के है तथा चौदह नक्षत्र दक्षिणायनके। यदि राम को कृषि का देवता माना जाय तो यवादि अन्न १४ नक्षत्र पर्यन्त खेतमें रहते है, फिर घर आते है। समुद्र के पार अर्थात् वृष्टि के पश्चात् ही सीता अर्थात् कृषि का आरम्भ होता है। राम ने जब रावण पर विजय पायी अर्थात् वर्षाऋतु के पश्चात् विजयादशमी के लगभग ही, यवादि अन्नो की कृषि आरम्भ होती है।

---

(१) वा० रा० १।२७। (२) ऋ० स० १।५१।११

अध्यात्मरामायण के अनुसार राम तो साक्षात् विष्णु थे, लक्ष्मण उनके प्रिय पार्षद शेषनाग तथा भरत-शत्रुघ्न क्रमश: चतुर्भुज विष्णु के यश-विस्तारक शंख तथा शत्रुनाशक आयुधचक्र अथवा कालचक्र थे। सीता स्वयं मधुकैटभमर्दिनी योगमाया थी।[1] रामायण की कथा का वेद ब्राह्मण आदि के विष्णु तथा अन्य महान प्राकृतिक देवताओं तथा ऋग्वेदोक्त अदिति तथा वाक् के वर्णन से सम्बन्ध स्पष्ट दीख पड़ता है।

---

(१) अध्यात्मरामायण १।४।१७-१८

पन्द्रहवाँ अध्याय

कृष्णलीला

श्री हौप्किस ने अपनी पुस्तक 'रेलिजन्स आफ इण्डिया' में कृष्ण को यादव-पाण्डव जाति का प्रधान देवता माना है जिन्होने दिल्ली के समीप कौरवो को परास्त करके अपना आधिपत्य स्थापित किया। वैसे कृष्ण वर्ण कृषि की आधार पृथ्वी को माना गया है। जैसा पहले बताया जा चुका है कि कौशिक-सूत्र में कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता को श्यामा कहा गया है। जगन्माता 'काली' एशियाई देशो में कृष्ण-वर्णा पृथ्वी का ही द्योतन करती हैं।

कृष्ण नाम से विष्णु की पूजा मेगास्थनीज के समय से तो होती ही थी। मेगास्थनीज ने हृषिकेष कृष्ण का वर्णन 'हेराक्लेस' नाम से किया है। पातजलि के महाभाष्य में कृष्ण तथा कस प्रकृति के पोषक तथा विनाशक प्रभावो के रूप में आये हे। परन्तु छान्दोग्योपनिषद् में देवकी-पुत्र कृष्ण का वर्णन है जिन्हें घोर अगिरस ने यज्ञ की निस्सारता तथा आदित्य की महत्ता की विद्या वतायी।[1] इससे कृष्ण के किसी देवकी नाम की मानुषी माता का पुत्र होना जान पडता है। परन्तु राम की भाँति कृष्ण के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि कृष्ण नाम का कोई ऐतिहासिक व्यक्ति हुए हो अथवा नही, कृष्ण के अद्भुत कर्म वैदिक देवताओ की वन्दना के ही रूपक हैं।

वैदिक काल में कृष्ण नाम से परमेश्वर की पूजा होती हो या नही, कृष्ण शब्द वेदो में देवताओ के सम्बन्ध में कई वार आया है। ऋग्वेद में अग्निको आंगरस कहा है जिससे देवताओ की उत्पत्ति हुई। छान्दोग्योपनिषद् में कृष्ण के गुरु घोर अगिरस हैं। ऋग्वेद में ही अग्नि को कृष्ण कहा है क्योकि जहाँ से होकर यह जाता है वह मार्ग कृष्ण वर्ण हो जाता है। पुन अग्नि तथा कृष्ण

(१) छा० उ० ३।१७।६–७

को एक दूसरे का सहचर कहा गया है। वैश्वानर अग्नि को अह कृष्णार्जुन अर्थात् कृष्णवर्णा रात्रि तथा श्वेतवर्णा दिवस के सम्मिश्रण अहोरात्र का प्रतिरूप सूर्य माना गया है । अग्नि की ज्वालाएँ कृष्ण तथा अर्जुन अर्थात् कृष्णवर्ण तथा श्वेतवर्ण की कही गयी हैं । अग्नि कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण है। यजुर्वेद मे भी अग्नि को कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण कालिख का उत्पादक कहा गया है ।[1] ऋ० स० १।-१६४।४७ के 'कृष्णं नियानं हरय: सुपर्णा' मन्त्र में अन्तरिक्ष को सूर्य आदि की गति को नियमित करनेवाला कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण कहा गया है जिसमे पहुँच कर सूर्य की हरणशील किरणे पृथ्वी का रस सोख कर पुन. वृष्टि द्वारा पृथ्वी को आर्द्र करती है।

ऋग्वेद में इन्द्र की प्रार्थना में भी कृष्ण शब्द कई बार आया है । इन्द्र को कृष्णो से अर्थात् रात्रि के अन्धकार से, उषा को मुक्त करनेवाला तथा कृष्ण एव रोहित अर्थात् काली तथा लाल गौओ में श्वेत दुग्ध को स्थापन करनेवाला कहा गया है । इन्द्र कृष्ण के अनुगामी हैं . तथा पृथ्वी को प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं अर्थात् कृष्ण वर्णारात्रि के अनन्तर सूर्यरूपी परमैश्वर्यशाली देवता आकर अपना प्रकाश फैलाते हैं अथवा कृष्ण-वर्ण मेघो के पीछे-पीछे चलकर उनका नाश करके इन्द्र उनसे जल बरसाते हैं । सूर्य के चक्र को भंग करनेवाले अर्थात् सूर्य के प्रकाश को मेघो से ढकनेवाले कृष्ण अर्थात् कृष्णवर्ण मेघो के अधिदेवता इन्द्र अन्तरिक्ष के जल मे निवास करते हैं ।[2]

कृष्ण का विष्णु अथवा परमैश्वर्यशाली सूर्य का रूप होना यों तो असंगत-सा लगता है क्योंकि कृष्ण का अर्थ ही श्याम वर्ण होता है जब सूर्य का प्रकाश उज्जवल है । इस रहस्य का उद्घाटन छान्दोग्योपनिषद् के उन मन्त्रो से होता है जिनमें सूर्य का सूक्ष्म रूप 'नील पर कृष्ण' अर्थात् नील के परे काला कहा गया है ।

'अथ यदेतदादित्यस्य शुक्ल भा सैवर्गय यन्नील पर कृष्ण तत्सामतदेतदेत-स्यामृच्यध्यूढं साम तस्मादृच्य ध्यूढं साम गीयते ।'[3] यह जो आदित्य का शुक्ल प्रकाश है वही ऋक् है तथा जो आदित्य का नील से परे कृष्ण अर्थात् नीले आकाश से परे अदृश्य रूप अथवा अतिशय नील कृष्ण अथवा रंगावलि में नीले से परे जो अदृश्य रंग या वर्ण है वही साम है । आदित्य का यह कृष्ण वर्ण एकान्त में समाहिता अर्थात् शान्त-सन्तृप्ता दृष्टि से ही देखा जा सकता है ।

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्ल भा. सैव साऽथ यन्नील पर कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मय पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुहिरण्य केश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्ण ।[4]

(१) देखिये पृष्ठ ३३ । (२) देखिये पृष्ठ ४५ । (३) छा० उ० १।६।५ । (४) छा० उ० १।६।६ ।

यह जो आदित्यका शुक्ल प्रकाश है वहीउ सका नील से परे कृष्ण रूप भी है। दोनो एक ही है तथा उन्ही के मध्य में हिरण्मय अर्थात् ज्योतिर्मय पुरुष दीख पडता है जिसके केश, भौंह, नख सभी ज्योतिर्मय है ।

अथर्ववेद मे ओषधि को राम, कृष्ण तथा असिक्नि अर्थात् नील वर्ण कहा गया है ।

नक्त जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च । इदं रजनि रजय किलासं पलित च यत् ।—(अथर्ववेद सहिता १।५।२।१) ।

हे ओषधे ! तू रात्रि में उत्पन्न होने के कारण कृष्ण वर्ण है तथा राम अर्थात् सुखकर भी है तथा नीलवर्ण भी है ।

ओषधि का अर्थ रोगनिवारक ओषध भी होता है तथा किसी भी उद्भिद को ओषध कहते है । राम, कृष्ण तथा असित् वर्ण का कृषि से सम्बन्ध स्पष्ट है ।

केवल कृष्ण ही का नाम वेदो में नही आया है परन्तु कृष्ण की प्रिया राधा-रानी भी वेदो मे अनेक स्थानो पर रैवा राधस् अर्थात् धन अथवा अन्नके अर्थमें वर्णित है जैसा अग्नि, इन्द्र आदि के वर्णन में पहले ही बताया जा चुका है । अग्नि के अर्चन से पुरुष 'रै' अर्थात् धन प्राप्त करता है । यह अग्नि धर्मात्माओ के 'रै' अर्थात् धन को बढानेवाला है । जब अग्नि को 'राधस्' अर्थात् धन वा अन्न भेंट किया जाता है तब अग्नि देवताओ से उनकी प्रशसा करती है । अग्नि रयिपतियो में सबसे श्रेष्ठ है । अग्नि मनोवाञ्छित कामनाओ को बरसाने-वाला वृष तथा भा अर्थात् ज्योतिर्मय भानु है अर्थात् वृषभानु है । वृषभानु अग्नि से रै अर्थात् धन उत्पन्न होता है । कृष्ण अर्थात् रात्रि की शोभा अग्नि की ज्वालाओ से, अत अग्नि के राधस् से होती है । अग्नि सुराधा है अर्थात् अच्छे रै अथवा धन से ओतप्रोत है ।[1]

ऋग्वेद में इन्द्र को भी 'राधानापते' अर्थात् धनो का पति कहा गया है । भक्तो को इन्द्र राधस् अर्थात् धन देकर उन्हें सुराधा अर्थात् धनवान बनाने-वाले है । इसी प्रकार वरुण आदि देवता भी राधस् देनेवाले है । 'राधस्' इन देवताओ के वशीभूत है । ये सभी देवता एकदेवाधिदेव आदित्य के रूप में है जो 'राधाओ के पति है' । ऋग्वेद में मरुद्गणो को भी यमुना अर्थात् तीव्रगति जलधारा से राधा अर्थात् धन की सृष्टि करनेवाला कहा गया है ।

देवकी के आठवें पुत्र कृष्ण है । मार्तण्ड सूर्य ऋग्वेद-सहिता के अनुसार

---

(१) देखिये पृष्ठ २५, ३२, इत्यादि

अदिति के आठवें पुत्र हैं। कृष्ण के पिता वसुदेव हैं। ऋग्वेद-सहिता में अग्नि 'वसु' अर्थात् लोको को वसानेवाला है। अग्नि कृष्ण कालिख को उत्पन्न करनेवाला है। अग्नि देवताओ का आधार है तथा देवमाता अदिति है अर्थात् देवताओ के उत्पादन का हेतु है।[1]

कृष्ण की माता देवकी अपने नाम से ही देवताओ की माता अदिति मालूम पडती है। अगिरस अथवा घोर अगिरस देवताओ का गुरु अग्नि है। कृष्ण का छान्दोग्योपनिषद् में देवकी-पुत्र कहा जाना ही उनके अदिति-पुत्र आदित्य होने की पुष्टि करता है जिन्होने अगिरस अग्नि से शिक्षा प्राप्त की।

कृष्ण गोपो के बीच गौओ के चरागाह व्रज में गौ चराते थे। ऋग्वेद में लगभग सभी प्रधान देवताओं को गोपा अर्थात् रक्षक कहा गया है। अग्नि गोपा है। अग्नि के प्रताप से गायो का दूध बढ जाता है। अग्नि सभी पशुओ का गोपा अर्थात् रक्षक है। यह गो तथा वाजस् अर्थात् अन्न का ईशान है। अग्नि देवताओं का गोपा अर्थात् रक्षक है। अग्नि कर्म करनेवालो का गोपा है।[2]

इन्द्र गायो के हेतु व्रज अर्थात् चरागाह-भूमि को समुन्नत करता है।[3] वल के दुर्ग को तोडकर इन्द्र ने देवताओ की गौओ अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा आदि के प्रकाश का उद्धार किया।[4]

पारसी धर्मग्रन्थ अवस्ता में सप्टिमान को 'गेउश' अर्थात् 'गो' तथा सृष्टि की देवी को 'गेउश उर्वान' गो की आत्मा कहा गया है।

कृष्ण को गोरस प्रिय था। ऋग्वेदोक्त मन्त्रो मे अग्नि को भी गोरस का चाहनेवाला कहा गया है।[5] गोरस अर्थात् मक्खन वा घृत से ही अग्नि की वृद्धि होती है। अग्नि देवताओ के पास हवि को पहुँचानेवाला है अत अग्नि को अर्पित किया गया गोरस सभी देवताओ के समीप पहुँचता है। यज्ञ के विशेष देवता विष्णु हैं अत यज्ञ की अग्नि को हर्षित करनेवाले गोरस का विष्णु को प्रिय होना स्वाभाविक है।

कृष्ण को गोरस इतना प्रिय था कि वे उसे चुराते भी थे। कृष्ण इस कारण हरनेवाले हरि कहलाये हैं। ऋग्वेद-मन्त्रों मे अग्नि शत्रुओ का धन हरनेवाला धनजय है। ऋग्वेदोक्त 'सर्व हरिर्वा इन्द्र' सूक्त में सूर्यरूपी इन्द्र उदक अथवा घृत को सोखनेवाले अर्थात् हरनेवाले हैं। इन्द्र गो अर्थात् पृथ्वी के रस को भी हरनेवाले है। सूर्य की किरणें हिमको का बल अपहरण करनेवाली है।[6]

---

(१) देखिये पृष्ठ ७७। (२) देखिये अग्निवृष्टि पृष्ठ २५-३५। (३) देखिये पृष्ठ ३८ (ऋ०म०१।१०।७)। (४) देखिये पृष्ठ ३६ (ऋ० म० १।११।५) एवं पृष्ठ ९९ (ऋ० म० २।२७।६)। (५) अहुनवैति गाथा। (६) देखिये पृष्ठ ५३।

कृष्ण ने अनेक राक्षसो का वध किया । उनका आकार भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियो जैसा था । तारामडलो के भी वैसे ही आकार कल्पित किये गये हैं । राक्षसो का एक नाम वृक भी है । निरुक्तकार ने चन्द्रमा को वृक कहा है । राक्षस निशाचर है । तारे केवल रात को ही दिखाई देते हैं । दिन में 'वृक' चन्द्रमा भी आभाहीन हो जाता है । अमावस्या को सूर्य के अत्यन्त समीप पहुँच कर तो 'वृक' चन्द्रमा का लोप ही हो जाता है ।

विष्णुपुराण तथा भागवत में कृष्ण द्वारा गोपियो के साथ 'रासलीला' तथा जल में नहाती हुई गोपियो के चीरहरण का वर्णन है । जैसा पहले कहा जा चुका है, ऋग्वेद मे आदित्य अथवा आदित्यो का एक नाम जार अर्थात् जल अथवा रात्रि को जलाने अथवा नष्ट करनेवाला भी है । जल का जार आदित्य सभी भूतो का जार है, क्योकि जल सर्वत्र वर्तमान है । प्रसिद्ध ज्योतिर्ग्रन्थ आर्यभटीय के हिन्दी अनुवादक स्वर्गीय ठाकुर उदयनारायण सिंह द्वारा लिखित भूमिका में 'रासलीला' को सूर्य द्वारा आकाशिक राशिचक्र का भ्रमण तथा चीरहरण को आकाशिक 'जल' अर्थात् 'व्योम' में 'निगमन' ताराओ के प्रकाश का अपहरण बताया गया है । कृष्ण ने कुब्जा का कूबड दूर किया । अग्नि, इन्द्र तथा वायु ने उभड-खाबड पृथ्वी को समतल किया । कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी थी । सूर्य वा इन्द्र 'दर्शनीय रुक्म' हैं । कृष्ण अर्जुन के सखा है । वेदो मे कृष्णार्जुन के नाम साथ-साथ आये है । इन्द्र ने सूर्य के रथ का चक्र उठाया था । कृष्ण ने भीष्म पर अर्जुन के रथ का चक्र फेंका था । अग्नि, देवताओं का तथा विशेषकर इन्द्र का सारथी है । अग्नि कृष्ण भी है । कृष्ण अर्जुन के सारथी थे । कृष्ण का जन्म भाद्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी को हुआ था जब चन्द्रमा कृत्तिका से रोहिणी में जा रहे थे । वेदाग ज्योतिप में अष्टक अर्थात् सूर्य-चन्द्रमा के ९०° के अन्तर पर होने का विशेष महत्व था एव नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से होती थी । कृष्णाष्टमी का सम्भवत कोई ज्योतिषीय महत्व रहा हो ।

कृष्ण-शत्रु कस का वर्णन पातजलि के महाभाष्य में आया है जिसमें कृष्ण तथा कस एक दूसरे के विरोधी माने गये हैं । गोमिल गृह्यसूत्र में कस अर्थात् कासे के पात्र का व्यवहार परिणहन सस्कार में बताया गया है जिसमे ब्रह्मचारी के नेत्र बाँध कर उसके दोनो हाथो को भी बाँध कर पानी में डाल दिया जाता था ।[१] इसी सूत्र में 'कस' वृषभ का विकल्प भी कहा गया है ।[२] गोमिल एव

(१) गोमिल ३।२।३७ (२) गोमिल ३।२।४५–४७

द्राह्यायण गृह्यसूत्र मे गोमास द्वारा मासाष्टका की निम्नलिखित विधि दी गयी हैं—...गौ के मारे जाने पर उरु तथा पित्तकोष को छोडकर सब अंगो से मास ग्रहण करके अग्नि में पकाकर कस अर्थात् कासे के वर्तन में रखकर उससे आहुति देवे ।[1] कस कृष्ण का प्रतिद्वन्द्वी माना गया है तथा गोमास रखने के व्यवहार में आने से यह क्रूरता का द्योतक बना । कंस कृष्ण के समान कोई व्यक्ति रहे हो अथवा नही, उनकी कथाएँ तो प्रकृति के तथा क्रूर सौम्य प्रभावो की ही द्योतक है । पुराण तथा महाकाव्य के लेखको ने तो अपने ग्रन्थो को वेद का भाष्य कहा ही है । गोमिल एव द्राह्यायण गृह्यसूत्रो में मधुपर्क प्रदान मे भी गोवध के हेतु उससे पूर्व कसपात्र में मधुपर्क अर्पण आवश्यक कहा गया है । इसके विपरीत इन्ही सूत्रो में ब्रह्मचारी को कृष्णवस्त्र तथा कृष्णभक्ष कहा गया है अर्थात् सौम्य स्वभाव ब्रह्मचारी को मटमैला वस्त्र पहनना एव मिट्टी के पात्र में खाना आवश्यक था ।

---

(१) द्राह्यायण गृह्यसूत्र ३।४

सोलहवाँ अध्याय

उपसंहार—देवी-देवता बनाम विज्ञान

पूर्वकथित विवरण से इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि देवता अथवा दैत्य आरम्भ में प्राकृतिक घटनाओ के कारण के रूप में ही मनुष्यो के जीवन में आये। उनके प्रारम्भिक रूप अथवा गुण मनुष्येतर प्राणियो जैसे थे तथा अधिकाश का रूप निर्धारित करने की कोई चेष्टा ही न की गयी। पीछे चलकर स्वभावत मनुष्य ने इन अलौकिक शक्तियो में भी मानुषी रूप-गुण की कल्पना की। यही से इनके विषय की अनेक कथाओ का आरम्भ हुआ।

विज्ञान के इस युग में देवता अथवा दैत्यो को भौतिक घटनाओ का कारण बताना असगत-सा जान पडता है, पर वास्तव में आधुनिक विज्ञान की दार्शनिक भित्ति पौराणिक कल्पनाओ के अपेक्षाकृत उतनी दृढ़ नही है जितना समझा जाता है। देव-दानव के युग से आधुनिक काल तक प्राकृतिक घटनाओ के परस्पर क्रम के विषय में चाहे जितना भी ज्ञान सचय क्यो न हुआ हो, इनके कारण-विषयक ज्ञान में तब से अबतक उतना अन्तर नहीं हुआ है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैक्स बोर्न ने अपनी पुस्तक—'नेचुरल फिलोसोफी आफ कौज ऐण्ड चान्स' (Natural Philosophy of cause and chance —Oxford University Press—1951) में बताया है कि प्राकृतिक घटनाओ का पारस्परिक क्रम जान लेना वैसा ही है जैसा रेलवे का टाइम टेबुल जान लेना। यदि रेलवे योग्य परिचालको के हाथ में है तो टाइम टेबुल मात्र जान लेने से ही रेलगाड़ी कब कहाँ थी और कहाँ रहेगी इसका पूरा ज्ञान हो जाता है। यात्रियो को अपने दैनिक व्यवहार में टाइम टेबुल को छोडकर और कुछ जानने की आवश्यकता नही है। रेलगाडी का कोई ड्राइवर अथवा गार्ड है या नही, टाइम टेबुल किसने बनाया, किसकी आज्ञा से टाइम टेबुल का पालन होता है, इन सारे विषयो के

ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग कुछ भी नही है । यह तो सर्वविदित है कि विज्ञान अभी तक जीवनतत्व का पता नही लगा सका है परन्तु निर्जीव विश्व के विज्ञान अर्थात् भौतिक विज्ञान के विषय मे ऐसी धारणा प्रचलित है कि वैज्ञानिको ने प्राकृतिक घटनाओ को परस्पर कार्यकारण-शृंखला में विद्ध कर दिया है तथा उनके ज्ञान के लिए प्रकृति के बाहर जाने की आवश्यकता नही है । कार्य अवश्य कारण पीछे आता है परन्तु घटनाओ को केवल क्रमबद्ध कर देने से उनमें कार्यकारण-सम्बन्ध का होना सिद्ध नही होता । कार्यकारण-सम्बन्ध के लिए यह आवश्यक है कि जिस स्थान तथा समय पर कारण की समाप्ति हो उसी स्थान तथा समय से कार्य का आरम्भ हो । विज्ञान अबतक प्राकृतिक घटनाओ में ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने मे विफल रहा है । न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण स्थान से सीमित नही था । किसी भी वस्तु का गुरुत्वाकर्षण उसी क्षण उस वस्तु से अत्यन्त दूर की वस्तुओ को प्रभावित करता है । क्रिया तथा प्रतिक्रिया को एक दूसरे के समान कहकर न्यूटन ने कार्यकारण का भेद ही उठा दिया । एक प्राकृतिक घटना 'क' पहले होती है तथा उसकी प्रतिक्रिया 'ख' उसके पश्चात । 'क' तथा 'ख' समान है अत 'ख' तथा 'क' भी समान है । निश्चयपूर्वक जितना 'क' को 'ख' का कारण कहा जा सकता है, उतना ही निश्चयपूर्वक 'ख' को भी 'क' का कारण कहा जा सकता है । परन्तु कारण का कार्य पीछे होना असम्भव है । इससे तो ऐसा ही जान पडता है कि प्राकृतिक घटनाओ का वास्तविक कारण इन घटनाओ से परे है । प्राकृतिक घटनाओ का परस्पर कार्यकारण-भाव एक भ्रममात्र है ।

तापविज्ञान की खोजो ने प्राकृतिक घटनाओ के पारस्परिक कार्यकारण-भाव पर और भी गहरा आघात किया । पदार्थों के ताप को उनके अन्तर्गत अणुओ की उच्छृंखलगति का बाह्य प्रभाव माना गया । प्रकृति में ताप तथा पदार्थों की प्रत्यक्ष गति के नियमो से ऐसा जान पडा कि इन अणुओ की गति उत्तरोत्तर उच्छृंखल हो जाती है तथा अणुओ की उच्छृंखलता में वृद्धि ही प्रकृति का मूल नियम है । प्राकृतिक घटनाओ का बाह्य रूप इन अणुओ के साथ होनेवाली अनियमित घटनाओ की ही समष्टि है । स्पष्ट ही इन सिद्धान्तो से हम प्राकृतिक घटनाओ के कारण के पास नही पहुंचते । वास्तविक घटनाएं तो अणुओ के साथ होती हैं जिनमे कार्य-कारण का सर्वथा अभाव जान पडता है । इन घटनाओ की समष्टि यदि अणुओ की परम उच्छृंखलता की ओर जा रही है, जो इनकी स्वाभाविक दशा है, तो आरम्भ में ही यह दशा क्यो नही थी ?

उन्नीसवी शताब्दी में विश्वव्यापी 'ईथर' की कल्पना करके उसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार के विकुंचन को ही विद्युत, चुम्बक-शक्ति, ऊर्जा तथा पदार्थ मानकर भौतिक विश्व की सभी प्रकार की घटनाओ को परस्पर कार्यकारण-सूत्र मे शृंखलाबद्ध करने की चेष्टा की गयी। अमरीकी वैज्ञानिक माइकेल्सन तथा मौरली ने एक ऐसा यन्त्र बनाया जिससे 'ईथर' में पृथ्वी की गति मापी जा सके। ऐसी किसी भी गति का पता न चला। आइन्सटाइन ईथर का त्याग करके देशकाल तथा दर्शक पर आधारभूत अपने प्रसिद्ध सापेक्षता-सिद्धान्त को वैज्ञानिको के सामने रखा जिसमें देश तथा काल अलग-अलग सत्ता न होकर एक ही सातत्य के अंश हैं, जिन्हें दर्शक ही अपने व्यक्तित्व द्वारा अलग-अलग करता है तथा प्रत्येक दर्शक इस देशकालिक सातत्य को अपने-अपने ढंग के देश तथा काल मे विभक्त करता है। इस सिद्धान्त में भौतिक विश्व का स्वतन्त्र वर्णन असम्भव है। यह वर्णन किसी न किसी दर्शक के सापेक्ष ही हो सकता है। इसी कारण इस सिद्धान्त को सापेक्षता-सिद्धान्त कहते हैं।

आइन्सटाइन के इस सिद्धान्त ने बड़े-बड़े चमत्कार दिखाये। इसमें पदार्थ देशकाल में विकुंचन का केन्द्रमात्र होकर रह गया, तथा गुरुत्वाकर्षण इस विकुंचन का प्रत्यक्ष रूप हुआ। भारी पदार्थों के समीप देशकालिक सातत्य के विकुंचन के कारण प्रकाश की गति विकृत पायी गयी। पदार्थों का गुरुत्व उनकी गति पर निर्भर करता पाया गया। प्रयोगो से यह सब कुछ सिद्ध हुए। सबसे बड़ी बात तो यह निकली कि शक्ति तथा पदार्थ एक ही सत्ता के दो रूप बनकर निकले।

यह प्रगति सचमुच चमत्कारिक है परन्तु यदि विज्ञान का लक्ष्य समस्त प्रकृति को कार्यकारण-सूत्र में विद्ध कर देना है, तो यह लक्षण आज पहले से भी अधिक दूर हो गया है। क्योकि देशकालिक सातत्य के विकुंचन ये अणु परमाणु, चित्र-विचित्र नियमो का पालन करते जान पड़ते है। हाइसेनवर्ग ने अपने अनिश्चितता-सिद्धान्त (Principle of Uncertainty) में आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगो के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी परमाणु की यदि गति निश्चित हो सकती है तो उसका स्थान सर्वथा अनिश्चित रहेगा तथा यदि स्थान निश्चित किया जायगा तो उसकी गति जानना असम्भव है। अणुओ की गति देशकालिक सातत्य में विकुंचनो की हिलोरो के समान जान पड़ती है। अणु का आकार सीमित है पर उसका स्थान असीम है। अणु-परमाणु तथा ऊर्जा की परस्पर प्रतिक्रिया सर्वथा अनिश्चित तथा उच्छृंखल जान पड़ती है

तथा इन प्रतिक्रियाओं के एकमात्र नियम Quantum Theory (ऊर्जाणु सिद्धान्त) का कोई तार्किक आधार नही दीखता। इनका नियमबद्ध प्रत्यक्ष रूप इसी उच्छृंखलता की समष्टि है। इसी आधार पर बीसवी शताब्दी के विज्ञान का प्रासाद निर्मित हुआ है। इस आधार के थोथापन का वर्णन आधुनिक युग के सबसे बड़े वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने प्रचलित भौतिक विज्ञान के दार्शनिक मैक्स-बोर्न को लिखे गये पत्रो मे इस प्रकार किया है।

In our scientific expectations we have progressed towards antipodes. You believe in the dice-playing God, and I in the perfect rule of law in a world of something objectively existing, which I try to catch in a wildly speculative way. I hope that some body will find a more realistic way, or a more tangible foundation for such a conception, than that which has been given to me. The great initial success of quantum theory cannot convert me to believe in that fundamental game of dice.

I cannot substantiate my attitude to physics in such a manner that you will find it in any way rational. I see of course that the statistical interpretation (the necessity of which in the frame of the existing formalism has been clearly recognised by yourself) has a considerable content of truth Yet, I cannot seriously believe it, because the theory is inconsistent with the principle that physics has to represent a reality in space and time without phantom actions over distances.[1]

'अपनी-अपनी वैज्ञानिक आशा में हम एक दूसरे से सर्वथा विपरीत चले गये हैं। आप उच्छृंखल तथा सर्वथा नियमहीन ईश्वर में विश्वास करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि सारी सृष्टि एक ही नियम के धागे में बंधी है तथा इस एक नियम का सभी भौतिक शक्तियां पालन करती हैं। भौतिक विश्व

(१) Max Born-Natural Philosophy of Cause and Chance-Oxford—1951.

का अवश्य ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। मैं सी अस्तित्व की एक झलक पाने के लिए इतने प्रकार की परिकल्पनाओ की शरण ले रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में सत्य को जानने का कोई न कोई ऐसा मार्ग निकाल लेगा जो मेरे मार्ग की अपेक्षा वस्तुजगत के अधिक समीप होगा तथा जिसकी नीव मेरे सिद्धान्तो की नीव से अधिक दृढ होगी। ऊर्जाणु सिद्धान्त उच्छृखलतापूर्ण दर्शन की प्रारम्भिक आशातीत सफलता मुझे ऐसे सिद्धान्त में कभी भी विश्वास नही दिला सकती।

भौतिक विज्ञानविषयक अपने विचारो की मै तर्क द्वारा पुष्टि नही कर सकता हूँ। मै मानता हूँ कि इस समष्टि की रीति से भौतिक घटनाओ को समझने में हम सत्य के कुछ पास अवश्य पहुँचते हैं। आपने ही इस रोति की आवश्यकता को सबसे पहले स्वीकार किया। पर मुझे इस सिद्धान्त में विश्वास नही है। भौतिक विज्ञान का ध्येय देशकालिक वास्तविक अस्तित्व का वर्णन होना चाहिये न कि देशकाल में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न वस्तुओ की उच्छृखल तथा नियमहीन प्रतिक्रियाओ की समष्टि को जानकर सन्तोष कर लेना।'

बीसवी शताब्दी के सबसे बडे कदाचित अब तक के सबसे बड़े वैज्ञानिक के मत से भौतिक विज्ञान को अब तक देशकाल से परे अनिवर्चनीय शक्तियो से छुटकारा नही मिल सका है। प्राकृतिक घटनाएँ एक दूसरे से स्वतत्र एव उच्छृखल है। मानो भिन्न-भिन्न देव-दानव अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें घटित कर रहे हो। ऋग्वेद में ही देव-दानवों के एक उद्गम अथवा आधार, अज्ञात तथा अज्ञेय क देव की खोज की गयी थी। उपनिषद्कार इसी विचारधारा को और भी आगे ले गये। उन्हें इन अनेक उच्छृखल देव-दानव आदि से सन्तोप न हुआ तथा उन्होने इस निखिल विश्व के आदि कारण को जानने की चेष्टा की, ठीक उसी प्रकार जैसे आज भी आइन्सटाइन वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा परिपक्व विचारधारा से भी उसी ईश्वर की खोज कर रहे हैं। इतने वैज्ञानिक अन्वेषण हो जाने पर भी भौतिक विश्व के नियमो में ऐसा कुछ भी नही मिला है जिससे देवदानव अथवा देवाधिदेव परमेश्वर के अस्तित्व की आवश्यकता न रहे। देव-दानवो द्वारा प्रकृति को समझनेवाली प्राचीन जातियो की चेष्टा उस समय के के लिए अतिशय श्लाघनीय थी तथा आधुनिक खोजो के आधार पर इस चेष्टा को तुच्छ अथवा निम्न समझने का कोई भी कारण नही है। वेद, उपनिपद्, महाकाव्य तथा पुराणो के लेखक उसी सत्य की खोज में थे जिसे आज भी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ में ढूंढा जा रहा है।

——०——

परिशिष्ट १

ग्रन्थसूची

संस्कृत-ग्रन्थ—

(१) ऋग्वेदसंहिता—मूल-ऋषि-देवतानुक्रमणिका सहित, स्वाध्यायमण्डल, किल्लापारडी (जिला सूरत) तथा औंध (जिला सतारा), १९४० ईसवी।

(२) ऋग्वेदसंहिता—सायनभाष्य सहित, वैदिक संशोधन-मण्डल, पूना, खण्ड १–४ सन् १९३३ से सन् १९५१ पर्यन्त प्रकाशित।

(३) यजुर्वेदभाष्यम्—स्वामी दयानन्द सरस्वती, संवत् १९७८, सन् १९२१ ईसवी।

(४) अथर्ववेदसंहिता—सायनभाष्य सहित, संपादक शंकर पाण्डुरंग, निर्णयसागर प्रेस, सन् १८९५ ईसवी (बम्बई-सरकार द्वारा प्रकाशित)।

(५) निरुक्तम्—मुकुंद झा बख्शी प्रणीत विवृति समेत–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३० ईसवी।

(६) शतपथब्राह्मणम्—कलकत्ता रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित, संवत् १९६०।

(७) तैत्तिरीयब्राह्मण—मैसूर गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी सिरीज़, सन् १९०८ ईसवी।

(८) ऐतरेयब्राह्मण—त्रिवाङ्कुर-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९४२ ईसवी।

(९) छान्दोग्योपनिषद्—आनन्दाश्रम, पूना, सन् १९१३ ईसवी।

(१०) बृहदारण्यकोपनिषद्
(११) विष्णुपुराण
} गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् १९९९ तथा २००८–९।

(१२) श्रीमद्‌भागवत महापुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर, सवत् २००६ ।

(१३) दुर्गासप्तशती } गीताप्रेस, गोरखपुर,

(१४) अध्यात्मरामायण } सवत् २००६ ।

(१५) श्रीमद्वालमीकीय रामायण—स्वाध्यायमडल, किल्लापारडी (जिला सूरत) तथा औंध (जिला सतारा), सन् १९४६ ईसवी ।

(१६) आर्यभटीय–ठाकुर उदयनारायण सिंह—शास्त्र-प्रकाशन-भवन, मथुरापुर, विद्दूपुर, मुजफ्फरपुर, सन् १९०६ ईसवी ।

(१७) कौशिक गृह्यसूत्रम्—प्रकाशक स्वर्गीय श्री ठाकुर उदयनारायण सिंह, शास्त्र-प्रकाशन-भवन, मथुरापुर, विद्दूपुर, मुजफ्फरपुर, सन् १९४२ ईसवी ।

(१८) गोभिल गृह्यसूत्रम् — सन् १९३४ ईसवी ।

(१९) खदिर गृह्यसूत्रम् — सन् १९३४ ईसवी ।

हिन्दी-ग्रन्थ—

(१) दर्शन-दिग्दर्शन श्री—राहुल साकृत्यायन—किताब-महल, इलाहाबाद, सन् १९४४ ईसवी ।

मराठी-ग्रन्थ—

(१) भारतीय ज्योतिष शास्त्र—श० बा० दीक्षित, आर्यभूषण प्रेस, पूना ।

अंग्रेजी-ग्रन्थ—

1. Mythology of All races—Indian. by A B. Keith, Iranian. by A. J. Carnoy; Markhal Joanes Company, Boston, U. S. A., 1917.
2. Myths of Babylon and Assyria. } By Donald A. Mackenzie — Gresham Publishing Company
3. Egyptian Myth and Legend }
4. Myths of China and Japan. }
5. Worlds in Collision—by Immanual Velikoverky, Victor Gollanze, London—1952
6 Prehistoric India—by Piggott, Penguin Books, 1950/52.
7. Early Astronomy and Cosmology—by C. P. S. Menon—George Allen and Unvin, London—1932.
8 Natural Philosophy of Cause and Chance—Max Born, Oxford University Press—1951.

9. Bali—By Max Bajetto—
W. Van Hoeve Ltd,
The Hague, Netherlands.
Bandeorg--Indonesia

10 The Island of Bali—by Mignel Covarrulias-Cassall and Company Ltd., London—1937.

11 Essays on the Religion of the Parsis-Haug-Trilmer's Oriental Series—1878.

12. Contributions to the Science of Mythology-Max Muller-Longman Green—1897.

13. Religion and Philosophy of the Veda-Keith, Harvard—1925

14 Hymns of Zoroaster-K. S. Guthrie—London, George Bell & Sons.

15. Zoroastrian Theology-Dhalla—1914.

16. Myths of the Hindus and Buddhists-Sister Nivedita & Ananda Coomaraswamy-London, George G. Harrap & Co—1913.

17. Introduction to a Science of Mythology-Jung and Ucvocnyi-Routledge and Kegan Paul-London, 1951

अनुक्रमणिका